ISSN 2278-5256 Kala Drishti

Annual Volume No. 10
2021-2022

Kala Drishti

Interdisciplinary Peer Reviewed
National Research Journal of Fine Arts & Humanities

Chief Editor
Dr. Shraddha Anilkumar
Principal

Editor
Dr. Monali J. Masih
Asst.Professor

Published By :
DEPARTMENT OF MUSIC
Dayanand Arya Kanya Mahavidyalaya
Jaripatka, Nagpur-440 014.
Ph.: 0712-2031350, E-mail : aryawani.ngp@gmail.com

ISSN 2278 - 5256

Kala Drishti

Volume - 10 Year 2021 - 22

Chief Editor : **Dr. Shraddha Anilkumar**
Principal
Dayanand Arya Kanya Mahavidyalaya, Nagpur.

Editor : **Dr. Monali J. Masih**
Assistant Professor
Dayanand Arya Kanya Mahavidyalaya, Nagpur.

Sub-Editors : **Prof. Anita Sharma (HOD)**
Assistant Professor
Dayanand Arya Kanya Mahavidyalaya, Nagpur.

Prof. Varsha Agarkar
Assistant Professor
Dayanand Arya Kanya Mahavidyalaya, Nagpur.

-:: Advisory Board :: -

Dr. Aparna Agnihotri
H.O.D. (Music),
Vasantrao Naik Institute of Arts
& Soc. Sci., Nagpur.
Chairman (B.O.S.) RTM Nagpur University.

Dr. Snehashish Das
H.O.D. (Music),
Mahila Mahavidyalaya, Amravati.
Chairman (B.O.S.) Sant Gadgebaba
Amravati University.

Dr. Deepak Kumar Mittal
Assistant Professor,
(Zoology) (Ph.D in Music)
Shri Satya Sai University of Technology
& Medical Sciences, Bhopal.

Dr. Nilima Chapekar
H.O.D. - Music (Retd.)
Devi Ahilya Vishwavidyalaya, Indore. (MP)

Prof. Jiwankumar Masih
H.O.D. (Retd.) of English
Nabira Mahavidyalaya, Katol.

Dr. Sunilkumar Navin
Principal
Associate Professor in English
Nabira Mahavidyalaya, Katol.

Dr. Prof. Arvind P. Joshi
Vice - Principal
Dr. Ambedkar College,
Diksha Bhoomi, Nagpur

- Subscription -
Institutional ₹ **1000/-** (Annual)
Individual ₹ **700/-** (Annual)

-:: Published By ::-
DEPARTMENT OF MUSIC
Dayanand Arya Kanya Mahavidyalaya,
Jaripatka, Nagpur - 440 014.
Ph. : 0712-2631350
E-mail : aryawani.ngp@gmail.com

ISSN 2278 - 5256

Volume - 10

Kala Drishti

Year 2021 -22

Published By : **DEPARTMENT OF MUSIC**
Dayanand Arya Kanya Mahavidyalaya,
Jaripatka, Nagpur - 440 014.
Ph. : 0712-2631350
E-mail : aryawani.ngp@gmail.com

Advertisement : Full Page Colour - ₹ **2500/-**
Full Page B/W - ₹ **1200/-**
Half Page B/W - ₹ **600/-**

Subscription : Institutional ₹ **1000/-** (Annual)
Individual ₹ **700/-** (Annual)

DD / Cheques should be sent in favour of
"The Principal, Dayanand Arya Kanya Mahavidyalaya,
Jaripatka, Nagpur(MS).

DISCLAIMER

The articles and other material that have been published in this issue do not reflect the views and ideas of the editors. The contributors are solely responsible for the views expressed and the material they have quoted in their articles.

ISSN 2278 - 5256

अनुक्रम

१)	मुख्य संपादक की ओर से.....	– डॉ. श्रध्दा अनिलकुमार नागपुर	१–२
२)	सम्पादकीय....	– डॉ. मोनाली मसीह नागपुर	३
३)	केवल गायन ही पर्याप्त नहीं अनुसंधान भी आवश्यक संगीत में	– डॉ. साधना शिलेदार क्षमा कावड़े नागपुर	४–९
४)	सोन्याची कांडी	– डॉ. साधना शिलेदार नागपुर	१०–१३
५)	भारतीय शास्त्रीय संगीत का स्वरूप और कवी नंददास के काव्य में उसकी अभिव्यक्ति	– डॉ. सुनिलकुमार तिवारी भागलपुर	१४–२२
६)	गर्भ के विकास में संगीत का योगदान	– प्रा. वर्षा आगरकर नागपुर	२३–२४
७)	पारम्परिक बंदिशों का परिष्किरण: कुछ विचार	– प्रा. गिरीश चंद्रिकापुरे नागपुर	२५–२८
८)	गढ़वाल का लोक वाद्य यंत्र–ढोल दमाऊं	– प्रा. अनिता शर्मा नागपुर	२९–३०
९)	सुमित्रानंदन पंत एवं उनका काव्य–साहित्य	– हेमचन्द चन्दोला उत्तराखंड	३१–३३
१०)	स्व. लता मंगेशकर के गाये दर्दीले गीत–एक श्रध्दांजली	– प्रा. जे. के. मसीह काटोल	३४–३५
११)	Road To Be Taken	– Dr. Sunil Kumar Navin Katol	३६

१२)	Music as a Therapy in modern era -An overview	– Dr. Bhavik Maniyar Bharsingi	३७–४३
१३)	''तबल्यातील एक महत्वपूर्ण सौंदर्यतत्व –पढ़ंत'' एक अध्ययन	– डॉ. सचिन कचोटे कोल्हापूर	४४–५२
१४)	संतमत के परिशिष्ट पर संगीत की भूमिका	– डॉ. रोज़ी श्रीवास्तव बीकानेर	५३–५६
१५)	भारतीय शास्त्रीय संगीत के प्रचार–प्रसार में मध्य प्रदेश के प्रसिध्द संगीत समारोहों का योगदान	– डॉ. दीपककुमार मित्तल ग्वालियर	५७–५९
१६)	संगीत और धर्म	– डॉ. मोनाली मसीह नागपुर	६०–६१

ISSN 2278 - 5256

आर्य विद्या सभा

श्री अशोक कृपालानी
अध्यक्ष

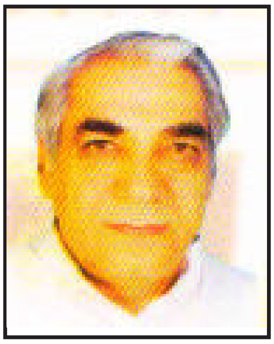

श्री घनश्यामदास कुकरेजा
उपाध्यक्ष

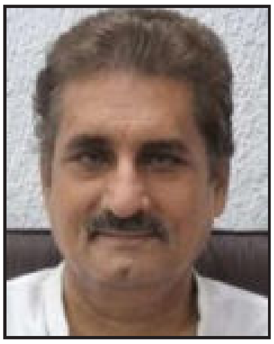

श्री राजेश लालवानी
सचिव

श्री वेदप्रकाश वाधवानी
सहसचिव

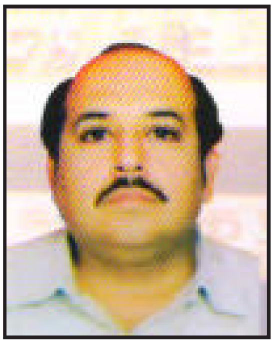

श्री भूषण खूबचंदानी
कोषाध्यक्ष

श्री दयाराम केवलरामानी
सदस्य

डॉ. अभिमन्यु कुकरेजा
सदस्य

श्री लालचंद लखवानी
सदस्य

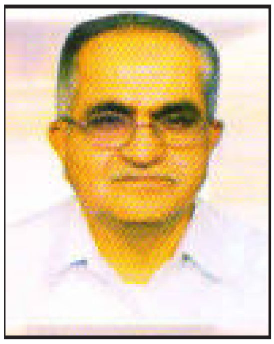

श्री करमचंद केवलरामानी
सदस्य

मुख्य संपादक की ओर से......

मुख्य संपादक
डॉ. श्रध्दा अनिलकुमार
प्रिंसीपल
दयानंद आर्य कन्या महाविद्यालय,
जरीपटका, नागपुर.

"संगीत ब्रम्हांड को आत्मा, मन को पंख, कल्पना को उड़ान और जीवन को आकर्षण और सबके लिए उल्लास देता है"
-प्लेटो

यह आप हम सबके लिए हर्ष की बात है कि सभी प्राध्यापक लेखकों, कलाकारों के सहयोग से कला–दृष्टि का १० वा अंक प्रकाशित हो रहा है। सबके प्रति महाविद्यालय की ओर से मैं कृतज्ञता व्यक्त करती हूं।

विगत १० वर्षों से कला–दृष्टि के अंक न रूके, न थमें, प्रकाशित हो रहें हैं। विश्वास है कला–दृष्टि का यह सफर आप सबके सहयोग से अनवरत चलता ही रहेगा।

किसी भी प्रकार का लेखन हमें चिंतन करने के लिए प्रेरित करता है। आज गंभीरता से चिंतन करने की एवं हमारी युवा पीढी में जागृति लाने की अत्यंत आवश्यकता है। शिक्षक से बेहतर यह काम और कोई नही कर सकता। आज देश का नेतृत्व भी देश की संस्कृति, परंपराओं को मजबूत बनाने में प्रयत्नशील है। देश की अस्मिता को संजोय रखना हम सबका परम कर्तव्य है। आज हमारे भारतीय शास्त्रीय संगीत की हजारो वर्षों से चली आ रही परंपरा हमारे संगीत गुरूजनों ने, साधकों ने विविध घरानों के माध्यम से जतन कर रखी है। सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक उथल–फुतल के बावजूद भी शास्त्रीय संगीत अपनी जगह कायम है। संस्कृति का संरक्षण उसकी जडों को सुरक्षित रखने में होता है।

आज के विज्ञान युग के उदय से एवं पाश्चात्य संस्कृति की आधुनिक प्रवृत्तियों के प्रभाव से एक बडा परिवर्तन हमारी जीवनशैली में हुआ है। आज की हमारी युवा पीढी एक भटकाव में बह रही है। भौतिकवादी जीवनशैली के प्रभाव में आकर अपने मूलभूत संगीत एवं संस्कृति के गौरवमय इतिहास के प्रति दुर्लक्ष कर एक गलत दिशा की ओर बढती सी दिखाई दे रही है। आज आवश्यकता है कि संगीत का जो गौरवमय इतिहास रहा है। उसे गहनता के साथ समझा और समझाया जाय।

आज आवश्यकता है मन को, दिल दिमाग को शांत रखने की, जो हमारे मूलभूत संगीत द्वारा संभव है ना कि पॉप जैसे चीखने चिल्लाने वाले संगीत में । आज के वातावरण का अवलोकन करे तो लोगों के मन अशांत है। कोरोना की दहशत आज भी मन में है, कितनों ने अपनों को खोया है और कई संकटों का सामना किया है। ऐसे तनावपूर्ण स्थिति में हमारा संगीत व्यक्ति के तनाव को दूर कर सकता है। मनोविशेषज्ञों की सलाह, यदि आप तनाव मे है तो अपने पसंद का संगीत सुने, इससे दिमाक में कुछ ऐसे हार्मोन रिलीज होते है, जिनसे शीघ्र ही

अच्छा महसूस होने लगता है। विज्ञान ने भी माना है ऐसे समय में संगीत का मन पर बहुत ही सकारात्मक असर होता है।

दूसरी बात —आज की नवीन शिक्षण पध्दति में हमारे शास्त्रीय संगीत को सीखाने के तौरतरीकों में परिवर्तन लाने की आवश्यकता है। बच्चे इस संगीत के प्रति आकर्षित हो, इसके महत्व को समझे, सीखने के लिए प्रेरित हो, अपनी संगीत की मूलभूत परंपराओं को आगे ले जाने की जवाबदारी महसूस कर सके, इसके लिए चिंतन, विचारों के आदान—प्रदान की भी आवश्यकता है। अत: एवं इस दिशा में हमारे प्राध्यापक निश्चित ही विचार करेंगे एवं हमारे शास्त्रीय संगीत के शिक्षण को मजबूत करने में प्रयत्नशील होंगे।

"संगीत की असल खूबसूरती इसमें है कि वह लोगों को जोड़ती है। यह एक सन्देश देती है और हम संगीतकार इसके संदेश वाहक होते है।"

- रॅाय आयर्स

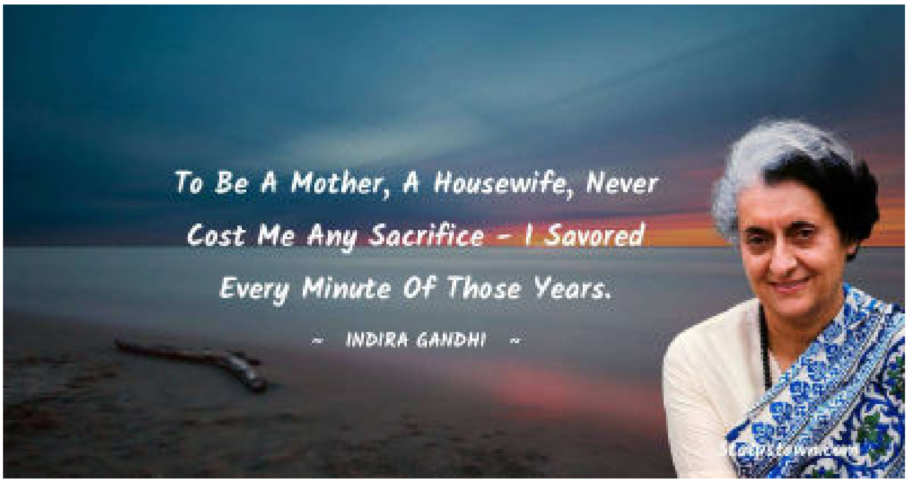

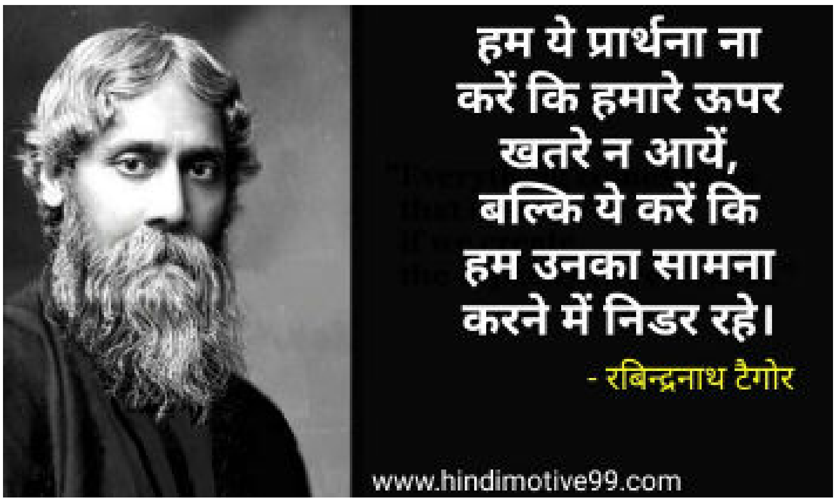

संपादकीय.......

डॉ. मोनाली मसीह
असिस्टंट प्रोफेसर
दयानंद आर्य कन्या महाविद्यालय,
जरीपटका, नागपुर.
monalimasih@gmail.com

संपादकीय लिखते वक्त मुझे फिल्म ''हम दोनों'' में रफी साहब के गाए गीत की दो पंक्तियां याद आ रही है ''किस लिए जीते हैं हम किसके लिए जीते हैं बारहा ऐसे सवालात पर रोना आया'' इन पंक्तियों में जिंदगी की एक फिलोसोफी नजर आती है। जिंदगी जीने के लिए कोई ना कोई बहाना जरूर चाहिए, कोई कारण अथवा कोई बहाना अथवा कोई मकसद नहीं रहा तो जिंदगी रूकने लगती है, थमने लगती है। व्यक्ति निष्क्रिय होने लगता है और फिर एक प्रकार से Nihilistic attitude का शिकार होने लगता है। यह स्थिति लेखक के लिए साहित्यकार के लिए, संगीतकार के लिए, चित्रकार के लिए और विशेष रूप से शिक्षक के लिए अत्यंत घातक सिध्द हो सकती है। इस स्थिति से बचने के लिए एक मंच एक प्लेटफार्म की जरूरत पड़ती है, जहां वह स्वयं को अपनी रचनाओं को, गायन को, अपनी प्रतिभा को व्यक्त कर दूसरों के साथ शेयर कर सुकून तो पाता ही है, साथ ही औरों को भी अपने क्षेत्र में आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करता है। पत्रिकाएं, जर्नल्स, सम्मेलन, महफिलें, प्रदर्शनी, पुस्तक प्रकाशन इत्यादि ऐसे ही माध्यम है जो साहित्यकार को, गायक को, चित्रकार को, लेखक को विशेष रूप से शिक्षक को सक्रिय रखने में बहुत बड़ा योगदान देते हैं। साथ ही अनेकों के लिए आगे बढ़ने का मार्ग प्रशस्त कर जाते हैं। ऐसे मंच निश्चित ही हमें वाइब्रेंट बने रहने का बहाना बन जाते हैं। ८—९ वर्ष हो गए कलादृष्टि के अंक बड़ी सफलता के साथ प्रकाशित होते रहें। इसका सारा श्रेय हमारे लेखक शोधकर्ता, प्राध्यापक मित्रों को ही जाता है जो अपनी रचनाएं, अपने रिसर्च पेपर्स भेजकर सहयोग देते रहें और हम कला दृष्टि का प्रकाशन करते रहे। मैं, हमारी प्राचार्या, संगीत विभाग तथा संपूर्ण महाविद्यालय परिवार की ओर से कृतज्ञता व्यक्त करती हूं। पिछले वर्ष भी कोरोना के कहर के बावजूद भी लेखकों की लेखनी चलती रही, रूकी नहीं अत्यंत सराहनीय बात रही।

कला दृष्टि को यूजीसी मानदंडों द्वारा निश्चित स्तर तक पहुंचाने का मानस केवल आप सभी लेखक सहयोगीयों द्वारा ही संभव है। कला दृष्टि यूजीसी की लिस्ट में आ जाए तो हम सबके लिए सम्मान की बात होगी और हम प्राध्यापकों,शोधकर्ताओं को व्यावहारिक लाभ भी प्राप्त हो पाएगा। शायद अपरिहार्य कारणोंवश इस वर्ष लेखों की कमी का आभास तो हुआ है पर विश्वास है कला दृष्टि को ऊंचे स्तर तक ले जाने में कला दृष्टि से जुड़े सभी लेखकों, प्राध्यापकों का सहयोग मिलता रहेगा और नए लेखक प्राध्यापकों का समावेश भी होगा। इस अंक के लिए जिन प्राध्यापक मित्रों ने अपनी रचनाएं भेजी है, मैं उनके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करती हूं और इतने बरसों से अपनी रचनाएं भेजकर सहयोग देते रहे उनके प्रति कृतज्ञता तो है ही साथ ही निवेदन है कि जिस प्रयास को आपने इतना मजबूत बनाया उसे और भी मजबूत और उपयोगी बनाए ताकि वह चलता रहे सबका भला करता रहे औरों को प्रेरणा देता रहे।

धन्यवाद।

केवल गायन ही पर्याप्त नहीं अनुसंधान भी आवश्यक संगीत में

डॉ. साधना शिलेदार
सहयोगी प्राध्यापक
वसंतराव नाईक शासकीय कला
व समाजविज्ञान संस्था, नागपूर
sadhanashiledar@gmail.com

क्षमा कावड़े,
शोधार्थी – गायन विभाग,
वसंतराव नाईक शासकीय कला
व समाजविज्ञान संस्था, नागपुर
E.mail: kshama@musician.org

ईश्वर के सृजन की सर्वश्रेष्ठ कृति मनुष्य है, जो कि अन्य प्राणियों से श्रेष्ठ है एवं जिसकी अमूल्य निधि निसर्ग द्वारा प्रद्त्त'वाणी' और'मस्तिष्क' है। जंगल में भटकनेवाली इसी मानवजाति ने आग और पहिये के अविष्कार के साथ ही सभ्यता का विकास करते हुए आज भौतिकता की चरम सीमा को छूने की उपलब्धि प्राप्त की है। इसी क्रम में उसने भावना और बुद्धि के मेल से विभिन्न कलाओं को भी निखारा हैं, जिसमें संगीत कला भी व्याप्त है। परिवर्तनशीलता, प्रकृति का एक अकाट्य सिद्धांत है। पृथ्वी पर जीवन के आरंभ से अब तक की यात्रा प्रकृति के इसी सिद्धांत के वशीभूत होकर पूरी हुई है, जो अनंत तक चलती रहेगी। समय के साथ–साथ हमारे चारों और प्रत्येक वस्तु में परिवर्तन आता है, फिर चाहे वह जीवित हो या जड़। मनुष्य जीवन ही इसका सबसे बड़ा उदाहरण है। मनुष्य बालरूप में जीवन की शुरूवात कर किशोरावस्था फिर यौवनावस्था और अंत में वृद्धावस्था को प्राप्त करता है। यह परिवर्तनिय हीतो है।

प्रकृति में विद्यमान नाद और लय के उपयोगीपक्षों के परिमार्जन के पश्चात इस संगीत विधा का जन्म हुआ। संगीत कला में गायन एक ऐसी सर्वोच्च कला है जिसमें मनुष्य अपने कंठ के द्वारा स्वर,शब्द और लय के माध्यम से अपने अंतर्निहित भावों को व्यक्त करता है। वादक अपने हृदयगत भाव को कंठके स्थान पर हाथों से अपने वाद्य पर प्रस्तुतीकरण करता है। ऐसे हीनृत्य मेंभी एक कलाकारगीत एवं वाद्य के माध्यम से अभिनय कर अपने भाव प्रकट करता है, और यह सब मनुष्य अपने बुद्धि कौशल के द्वारा ही प्रस्तुत कर पाता है। मनुष्य एक विचारशील प्राणी है, किसी भी विशेष परिवर्तन अथवा बदलाव को देखकर उसके मन में क्या, कब, कौन, कैसे, कहाँ और क्यों जैसे प्रश्नों का आना स्वाभाविक है । जैसे–जैसे प्रकृति में परिवर्तन आता है मनुष्य के विचारों में भी परिवर्तन आता है, और अपने इन्हीं विचारों के उत्तर जानने के लिए वह नित्य नए नए तथ्य ढूंढने का प्रयास करता है।मनुष्य के यही प्रयास और इन प्रश्नों का उत्तर जानने की उसकी जिज्ञासा एवं उत्सुकता ये सब शब्द का रूप ले लेती है। अगर विचार करें तो पाएंगे कि शोध का मूल कारण जिज्ञासा ही है, अर्थात ज्ञान और समझ की निरंतर खोजकर ना जैसे मनुष्य के कारण जानने की जिज्ञासा और उसके प्रयास कभी खत्म नहीं होते। वैसे ही समाज के उपलब्धियों की तरफ बढ़ते हुए कदम कभी नहीं रुकते। यह एक व्यवस्थित खोज है अर्थात ज्यों–ज्यों मनुष्य के विचारों में वृद्धि हुई है और उसकी ज्ञान की भूख बढ़ती गई है, त्यों–त्यों शोध का क्षेत्र भी बढ़ता गया है। जीव और जगत् के बीच अनेक ऐसे रहस्य हैं, जिन्हें आज तकमान वसुल झाता आ रहा है। सृष्टि में व्याप्त रहस्यमयी गुत्थियों को खोलने का प्रयास मानव अनेक क्षेत्रों में अनेक स्तरों पर करता रहा है। इन्हीं रहस्यों अथवा समस्याओं की तह में पहुँचकर व्यक्ति जिन निर्णयों पर पहुँचता है वह उसके अथक

परिश्रम का परिणाम होते हैं। समस्या या रहस्य का समाधान प्रकृति की विफल सम्पदा में हो सकता है, दर्शन में हो सकता है, विज्ञान में, साहित्य मे तथा संगीत में किसी भी क्षेत्र में हो सकता है और यह समाधान केवल शोध–प्रक्रिया के द्वारा ही संभव है। शोध ही है जो मनुष्य के ज्ञान के क्षितिजों का विस्तार करता है। प्रत्येक शोध के साथ समाजको एक नई उपलब्धि की प्राप्ति होती है। इस तरह कह सकते है कि शोध प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से हमारे जीवन से भली भांति जुड़ा हुआ है।

संगीत मनुष्य के जीवन में अत्यधिक महत्व रखता है, परंतु सिर्फ गायन ही पर्याप्त है क्या? जबकि संगीत का प्रभाव तो विशाल रूप से है इसलिए इसमें अनुसंधान होना नितांत आवश्यक लगता है। इसके विभिन्न पक्षों को शोध के द्वारा ही सामने लाया जा सकता है। ऐसा नहीं है कि संगीत में पहले शोधकार्य नहीं हुए हैं। इस अत्यंत प्राचीन विधा में शोधकार्य अत्यंत पूर्वकाल से ही प्रारंभ हो चुके हैं। इतने विशालसागर रूपी संगीत विधा में प्रारंभ से अब तक जो परिवर्तन आए हैं उसका आधार केवल शोध ही है। संगीत विद्वानों ने नए नए शोधकर नए नए तथ्यों को उजागर किया है, जिससे संगीत का स्वरूप बदलता चला गया। संगीत की उत्पत्ति, नाद का उद्घटन, लोक परंपराओं में संगीत, भारतीय संगीत का प्राचीन इतिहास, उत्तर भारतीय संगीत, मुस्लिम शासकों के प्रभाव से संगीत का परिवर्तित स्वरूप आदि यह कुछ ऐसे तथ्य थे जिन पर प्रश्न चिन्ह लगा हुआ था और यही तथ्य आगे चलकर सांकेतिक अनुसंधान का आधार बने।

डॉ. सुरेशव्रतराय के अनुसार– "आकस्मिक तथा असंबद्ध हा–हा, हू–हू जैसी संकेतात्मक ध्वनियों से संगीत की शोध यात्रा आरंभ होती है। फिर उदात्त, अनुदात्त और स्वरित तीन प्रकार के स्वर आगे चलकर ७ और तत्पश्चात १२ स्वरों का निर्धारण और स्पष्ट प्रयोग। इतना ही नहीं २२ श्रुतियों का प्रतिपादन, रूद्र वीणा को आवश्यकता अनुसार परिवर्तित करके नए वाद्य श्रुति वीणा को आधार बनाकर षड्जग्राम, मध्यमग्राम, चतु:सारणा द्वारा उत्पन्न २२ श्रुतियों तथा उनके अंतराल को सहज एवं स्पष्ट रूप से विकसित करना, स्वरों के साथ रागों के स्वरूप, राग–जातियों, सप्तकों का निर्धारण, प्रारंभ में वेदों के छंद–गान के पश्चातजाति, प्रबंध, ध्रूवा तथा ध्रुपद–गायन–शैलियाँ, रागालाप, रूपकालाप की व्याख्या तथा स्वरप्रधान व भावप्रधान शैलियों का प्रतिपादन, रागों के स्वरूप के संदर्भ में मूलज, देशज, छाया तथा संकीर्णभाषा का प्रतिपादन, जिनसे सूत्र ग्रहण करके कालांतर में अर्द्धशास्त्रीय कही जानेवाली शैलियों का प्रचलन हुआ।"(१)

उपरोक्त मत मेंलेखक ने संगीत के आदि से अबतक की यात्रा का बखान करने का प्रयास किया है। भारतीय संगीत में वेदों का स्थान सर्वोपरि है। इन वेदों में पहले केवलतीन स्वर (उदात्त, अनुदात्तऔर स्वरित) का ही वर्णनहै, तत्पश्चात अनुसंधान के फलस्वरुप ही विभिन्न ग्रंथकारों द्वारा अपने ग्रंथों में सात शुद्ध स्वरऔर फिर उनके विकृत रूप का वर्णन किया गया है। ग्राम–मूर्च्छना, जाति, रागगायन, ख्यालगायन यह सभी अनुसंधान के फलस्वरूप ही संगीत में प्रविष्ट हो पाए। प्राचीनकाल से ही संगीत में अनेको शोध होते रहे हैं। इसके उदाहरण श्रीनिवास द्वारा वीणा के तार पर स्वरों की स्थापना, पंडित नारायण मोरेश्वर खरे द्वारा दिए गए ३० रागांग, थाठ की उत्पत्ति, पंडित विष्णुनारायण भातखंडे के १० थाठ, वेंकटमखी के ७२ थाठ, थाठ एवं राग का संबंध, पंडित भातखंडेजी द्वारा परंपरागत रागों की बंदिशों को स्वरलिपिबद्ध करना, नोटेशन पद्धति आदि इस अनुसंधान के ज्वलंत उदाहरण है। अनेक संगीत विद्वानों ने ऐसे कई तथ्यों को आधार मानकर उन पर नित नए अनुसंधान किए हैं, और इन्हीं अनुसंधानों के फलसवरूप संगीत का स्वरूप इतना बदल चुका है कि जो संगीत वैदिक काल में केवल ब्राह्मणों का विशेषाधिकार था और केवल यज्ञ आदि के समय गाया जाता था अब समाज के हर वर्गतक पहुंच चुका है।

"आज के वैज्ञानिक युग में प्रत्येक विषय की और देखने की प्रबुद्ध वर्ग की दृष्टि बदल गई है। प्रत्येक विषय का विश्लेषण होकर उसमें अनुसंधान कार्य हो रहा है। संगीत एक अत्यंत प्रभावशाली ललित कला है, अत: वह भी इससे अछूता रह नहीं सकता। विगत २५—३० वर्षों में संगीत में विशेष रूप से अनुसंधानकार्य का श्री गणेश हुआ है। संगीत जिज्ञासु में मौलिक विचार करनेवाले विद्वान प्रकाश में आ रहे हैं यह एक अच्छी शुरुआत है।"(२)

इन तथ्यों से यह पूर्णत: स्पष्ट हो जाता है कि संगीत एवं अनुसंधान का प्राचीन एवं प्रगाढ़ संबंध है। संगीत में नित्य नवीनता के लिए अनुसंधान अत्यंत आवश्यक प्रतीत होता है।

वैदिक काल से मध्यकाल तक संगीत की शिक्षा गुरुकुल एवं आश्रमों में दी जाती थी।गुरु व उस्ताद गुरुकुल में अपने शिष्यों को सीना—ब—सीना संगीत की शिक्षा प्रदान किया करते थे। इसे व्यक्तिगत शिक्षणप्रणाली भी कह सकते हैं। वैदिककालीन संगीत विषय सामग्री पर दृष्टिपात करने पर प्रतीत होता है कि उस समय संगीत कला के क्रियात्मक व सैद्धांतिक दोनों पक्ष सर्वोच्च तल पर प्रतिष्ठित थे। पूर्व मध्यकाल में शिक्षण के विषय में जहाँ—तहाँ कुछ उल्लेख से पता चलता है कि उस समय भी संगीत शिक्षण प्रचार मेंथा। उस काल मेंराजाजितने शूरवीर थे उतने ही संगीत प्रेमी भी थे। राज दरबारों में अनेक संगीतकारों और कलाकारों को राजाश्रय मिला। जिससे इन कलाकारों का विकास हो पाया। संगीत की शिक्षा उनकी शिक्षा का अभिन्न अंग थी, अर्थात उस समय संगीत शिक्षण का प्रचार प्रसार काफी उन्नत अवस्था में था। मुस्लिम शासकों के आगमन के पश्चातसंगीत की स्थिति में काफी परिवर्तन हुए, परंतु उस समय में भी संगीत प्रशिक्षण निरंतर रूप से चलता रहा। राजाओं के दरबारों में संगीतज्ञ को बहुत आदर सम्मान मिलता था। इस काल में संगीत शिक्षणगुरु शिष्य परंपरा द्वारा ही संपन्न होता था, परंतु धीरे—धीरे संगीतगायन, वादन राजाओं के परिवारों तक सीमित हो गया था। इसी समय संपूर्ण भारत छोटे—छोटे भागों में विभाजित हो गया था। ऐसी स्थिति में संगीत भी कई वर्गों में विभक्त हुआ तथा सभी अपने अपने संगीत का विकास अपने अपने दृष्टिकोण से करने लगे। जिसके फलस्वरुप संगीत की कई शैलियाँ विकसित हो गई, जिन्हें आगे चलकर घराना की संज्ञा दी जाने लगी।

डॉ पंकजमाला शर्मा के अनुसार "संगीत से संबंधित इतने विशाल साहित्य का सृजन एक दिन में अथवा अपने आप हो गया, ऐसा नहीं माना जा सकता। इसके पीछे संगीत शिक्षा की निश्चित रूप से एक दीर्घ परंपरा रही होगी।" (३)

अत: स्पष्ट है कि संगीत शिक्षण को एक उन्नत कला का रूप प्रदान करने में शिक्षण पद्धति का बहुत बड़ा योगदान रहा है।

भारत में विदेशियों के आगमन के पश्चात संगीत पद्धति कई चरणों से होकर गुजरी परंतु मध्यकाल के अंत तक गुरु शिष्य परंपरा पद्धति अपने चरमोत्कर्ष तक पहुंच चुकी थी, तत्पश्चात भारत में अंग्रेजों का आगमन हुआ। अंग्रेजों के भारत आगमन से संगीत शिक्षण पद्धति में भी आकस्मिक परिवर्तन हुए। विद्यालयों एवं महाविद्यालय की स्थापना हुई। शिक्षा प्रणाली का पश्चिमीकरण होने लगा। इसका प्रभाव संगीत पर भी पड़ा। पहले जो संगीत शिक्षा केवल गुरू शिष्य परंपरा द्वारा ही प्राप्त होती थी, परन्तुपं. दिगम्बर पुलुस्कर एवं पं. भातखण्डेजी के अथक प्रयत्नों से आज संगीत अधिकांश स्कूल व कालेजों में विषय के रूप में पढ़ाया जाता है। संगीत को शिक्षा के पाठ्यक्रम में शामिल किया गया। संगीत की शिक्षा विश्वविद्यालयों में भी दी जाने लगी। विश्वविद्यालय के अंतर्गत छोटे संगीत विभाग की स्थापना एवं कई विद्यालयों की स्थापना हुई। जिसमें संगीत को भी अन्य विषयों की तरह एक विषय की भांति पाठ्यक्रम में सम्मिलित किया गया। तत्पश्चात महाविद्यालय एवं विश्वविद्यालय में अन्य विषयों की तरह संगीत विषय पर भी अनुसंधान का प्रचलन बढ़ा एवं अनुसंधान के स्वरूप में तेजी से बदलाव आया, और अब यह उच्च शिक्षा

का एक महत्वपूर्ण अंग बन चुका है। इसके स्वरूप को दो भागों में विभक्त कर सकते हैं—: अ) उपाधि प्राप्त अनुसंधान और ब) निरोपाधि अनुसंधान।

अ) उपाधि प्राप्त अनुसंधान—इन्हें उस श्रेणी में रखा जा सकता है जहाँ विश्वविद्यालयों के अंतर्गत अनुसंधान होते हैं। जिसमें अनुसंधानकर्ता अपने अनुसंधान के लिए पहले क्षेत्र निर्धारित करता है फिर उसे विश्वविद्यालय के नियमानुसार द्वारा पंजीकृत करवाता है। फिर विश्वविद्यालय अनुसंधानकर्ता को अनुसंधान पूर्ण होने के पश्चात डॉक्टरेट की उपाधि से वशीभूत भी करता है। जबकि

ब) निरोपाधिअनुसंधान—: यह वे अनुसंधान हो सकते हैं जिनमें किसी उपाधिको प्राप्त करने का उद्देश्य नहीं रहता। यह केवल ज्ञानार्जन, आत्मिक संतुष्टि एवं सामाजिक हित के लिए किए गए अनुसंधान होते हैं। प्राचीनकाल में जितने भी ग्रंथ हमें प्राप्त होते हैं, वे सभी पूर्वकालीन ग्रंथकारों के ज्ञानार्जन द्वारा किए गए अनुसंधान ही हैं। यह ग्रंथ निरोपाधि अनुसंधान के अंतर्गत आनेवाले अनुसंधान कार्य हो सकते हैं। इन अनुसंधान कार्यों ने संगीत के क्षेत्र में बहुत बड़ा योगदान दिया है। संगीत में कई ऐसे क्षेत्र हैं जिनके विषय में जानकारी मिलना संभव नहीं हो पाता था, परंतु इन अनुसंधानकार्यों के पश्चात उन सभी क्षेत्रों मे ज्ञान प्राप्त करना अत्यधिक आसान हो गया है। पाठ्क्रम में संगीत विषय होने के कारण अभी संगीत के क्षेत्र में बहुत अनुसंधान की आवश्यकता है। अनुसंधान के प्रारंभ के विषय मेंजानने के पश्चात उसका अर्थ जानना अतिआवश्यक लगता है।

विनय मोहनशर्मा के अनुसार—"मन का स्वभाव है मनन करना, इसी स्वभाव के कारण वह कभी ज्ञात तथ्यों का समर्थन करता है तो कभी उनकी नई व्याख्या करता है और इस प्रकार अपने ज्ञान को अघत बनाए रखता है। भली—भांति व्याख्या सहित परिकल्पना या समस्या को हल करने की व्यवस्थित तथा तटस्थ प्रक्रिया का नाम ही शोध है।"(४)

मनमोहनवर्मा के अनुसार—"Research is an intellectual activity which brings to light new knowledge or corrects previous errors and misconceptions and adds in orderly way to existing corpus of knowledge."(५)

अर्थात अनुसंधान वह बौद्धिक क्रिया है, जो नवीन ज्ञान उत्पन्न करतीहै, या पूर्वगामी त्रुटियों या अशुद्ध धारणाओं का संशोधन करती है औरव यवस्थित ढंग से वर्तमान ज्ञान कोष में वृद्धि करती है।

F.L.Whitneyds अनुसार &"Research is a careful or critical inquiry or examination in seeking facts or principles, a diligent investigation to ascertain something."(६)

अर्थात तथ्यों या सिद्धांतों का पता लगाने के लिए सावधानीपूर्वक या तर्कपूर्णढंग से अध्ययन करना या किसी चीज़ को सुनिश्चित करने के लिए अध्ययन पूर्वक खोजकर नाही अनुसंधान है।

ऐसे विभिन्न विद्वानों ने अनुसंधान को अपने अनुभव द्वारा परिभाषित किया है। और इसी तरह सभी परिभाषाएँ ही विभिन्न विद्वानों के विभिन्न मत हैं। इनके अनुसार यदि इन सभी परिभाषाओं में दिए गए तथ्यों को मिलाकर अनुसंधान को परिभाषित किया जाए तो कह सकते हैं कि" शोध वह व्यवस्थित एवं उच्च प्रक्रिया है, जिसके अंतर्गत सभी प्राप्त तथ्यों का आंकलन एवं वर्गीकरण किया जाता है, तत्पश्चात उन तथ्यों के पारस्परिक संबंधो एवं उनसे मिलनेवाले प्रमाणों के द्वारा किसी निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है अर्थात् किसी समस्या का समाधान किया जा सकता है।

वास्तव में शोध का अर्थ है नये तथ्यों की खोज करना, स्वतंत्र बात कहना, जो बातें अज्ञात थी उसे ज्ञात करना, पुराने तथ्यों की नईव्याख्या करना, नए और पुराने तथ्यों को मौलिकता के साथ जोड़ना, और जो नैतिकता की दृष्टि से मानव समाज के लिए कल्याणकारी हो।अर्थात स्वयं के अनुसार अगर शोध को परिभाषित करूँ तो—शोधार्थी व निर्देशक के समन्वय से विषय का चयन करना एवंविषय की गहराई तक

पहुँचकर उसके सामाजिक, सांस्कृतिक व आर्थिक स्थिति का अध्ययन कर निष्कर्श पर पहुँचना ही शोध है। एवं शोध हेतु प्रमुख तत्व–गृहण क्षमता, वस्तुनिष्ठता, तार्किक्ता, भावी सम्भावनाएँ एवं बौधिक ईमानदारी।

संगीत कला जिसके दोनों पक्षों (सैद्धांतिक एवं प्रायोगिक) में शोधकार्य की प्रबल संभावनाएँ है। शोधकर्ता को सर्व प्रथम संगीत के दोनों पक्षों में से किसी एक पक्ष को शोध कार्य करने के लिए चयन करना पड़ता है और यह चयनउसकी रूचि के अनुरूपहोताहै, अर्थात यदि शोधकर्ता की रुचि संगीत के क्रियात्मक पक्ष में है तो वह अपने लिए ऐसे विषय का चयन करेगा जो कि क्रियात्मक पक्ष से संबंधित हो तथा इसके विपरीत जिसकी रुचि प्रायोगिक पक्ष में होगी तो वह उसी के अनुसार विषय का चुनाव करेगा। अर्थात संगीत एक ऐसी प्रायोगिक कला है, जिसका क्रियात्मक पक्ष भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है। अत: संगीत के क्रियात्मक पक्ष में अनुसंधानकार्य की निरंतर सम्भावनाएँ बनी रहती हैं। प्राचीनकाल से आज तक संगीत में बहुत से वाग्गेयकार हुए हैं। प्रत्येक वाग्गेयकार की बंदिश निर्माण में भिन्नता है अत: इस परभी शोध–काय र्किया जा सकता है। नए–नए रागों के निर्माण के अन्तर्गत सौन्दर्यात्मक, कलात्मक एवं भावात्मक राग बनाए जा सकते हैं। जैसे–सदारंग अदारंग की रचनाएँ व प्रचलित घरानों के संदर्भ में तुलनात्मक अध्ययन, आधुनिक राग प्रकार, जैसे–मल्हार, सारंग आदि के प्रकार,कान्हड़ा के प्रकार, बिलावल अंग के राग, कल्याण अंग के प्रचलित राग, विख्यात कलाकारों की गायकी व गायन शैलियाँ, घराना व उनकी गायकी, रागों का तुलनात्मक अध्ययन, लोकसंगीत, लोकसंगीत व शास्त्रीय संगीत का अंत: संबंध, सुगमसंगीत, चित्रपटसंगीत, लोक धुनें, लोक धुनों का प्रभाव, कंठसाधन (Voice&Culture) आदि इन जैसे विषयों में शोध कार्य किये जा चूके है, फिर भी इनसे ही जुड़े और ऐसे कई विषय है जिनपर शोध की अभी भी कितनी सम्भावनाएँ हैं। इसके अतिरिक्त संगीत का शिक्षण पक्ष भी महत्वपूर्ण है। जिसमें शोधकार्य स्वतंत्र रूप से किए जाने की प्रबल संभावनाओं को बिल्कुल भी अस्वीकार नहीं किया जा सकता। विद्यालयीन शिक्षा–प्रणाली हो अथवा घरानेदार पद्धति की शिक्षा, अनुसंधान कर्ताओं के लिये यह विषय बहुत उपयुक्त रहा है। वतर्मान समय में इन विषयों की व्याख्या करते शोधकार्य भी उपल्बद्ध है, बावजुद इसके वर्तमान संगीत शिक्षण पद्धति पर वैज्ञानिक उपकर्णों का बड़ता प्रभाव जैसे कई विषयों पर रूची अनुसार विचार कर संगीत के शिक्षणपक्ष में अनुसंधान करने के अनेक द्वार है।

डॉ. मनोरमाशर्मा के अनुसार– "आधुनिक काल में संगीत जहाँ शिक्षा का एक आवश्यक अंग बनता जा रहा है वहीं इस क्षेत्र में अनुसंधान की अत्यन्त आवश्यकता है जिससे इसे नई दिशा मिल सके। संगीत केवल मनोरंजन का ही साधन बनकर न रह जाए, या केवल कुछ लोगों तक ही सीमित न रहकर जनसाधारण का विषय बन सके और शिक्षा का एक अभिन्न अंग बनकर विद्यार्थी के चरित्र–निर्माण व उसके सर्वतोन्मुखी विकास के लिए सहायक हो।"(७) अर्थात संगीत में अनुसंधान की आवश्यकता के विषय पर अगर बात की जाए तो अनुसंधान की जितनी भी आवश्यकता अनुभव की जाती है वह सब उसकी उपयोगिता के रूप में मनुष्य और समाज के सामने आती है, अर्थात जब भी कोई नवीन शोध किया जाता है तो उस शोध के पूर्ण होने के पश्चात जो भी समाधान या कुछ नए तथ्य सामने आते हैं वह समाज के लिए अत्यंत उपयोगी होते हैं। जैसा कि ज्ञात होचुका है कि संगीत में पूर्वकालीन विद्वानों ने अनेक अनुसंधान किए हैं, जिसके फलस्वरूप संगीत के आरंभ से अबतक के स्वरूप में अनेक बदलाव आए हैं। संगीत में संलग्न गतिविधियों की वजह से भी काफी परिवर्तन आए हैं। उससे संबंधित लोगों की रूचि के अनुसार भी कई बदलाव हो चुके हैं। देश के राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक, वैचारिक परिवर्तन की वजह से भी कई बदलाव सामने आये हैं। यहाँ

यह आवश्यक हो जाता है कि संगीत में और अधिक अनुसंधान किए जाए। जिससे इन अनुसंधनों द्वारा संगीत की पूर्वकालीन स्थिति का पता चल सकेगा, एवं पुराने सिद्धांतों को पुन: प्रयोग में लाकर आधुनिक संगीत के साथ जोड़ा जा सकेगा। इस संपूर्ण परिवर्तन के मध्य जो परंपरागत गायन वादन शैलियां विलुप्त हो चुकी है या विलुप्त होने की कगार पर है, उन्हें वापस भी तो लाया जा सकता है। कुछ ऐसे वाद्य जो केवल आज संग्रहालय की शोभा बन चुके हैं उन वाद्यों के विषय में कुछ ही संगीतज्ञों को मालूम है। अत: उन पर किए गए अनुसंधानों के द्वारा वह भी तो प्रकाश में लाए जा सकते हैं।

अनुसंधान का करना अनुसंधानकर्ता की अपनी वैयक्तिक एवं वैचारिक सोच पर निर्भर होता है। शोधार्थी अपने ज्ञान–भंडार में वृद्धि करने के लिये या फिर सत्य का उद्घाटन करने के लिये, सर्वदा नवीन एवं नूतन तथ्यों की खोज के लिये या फिर मौलिकता प्रदर्शित करने के लिये भी शोध कर सकता है। जैसा कि अपनी पूर्वो परपरम्परा का अध्ययन करने के उपरान्त प्राप्त होता हैं कि मानवीय सभ्यता एवं संस्कृति का आधार शोधो परांत ही सुदृढ़ एवं विकसित हुआ है।

डॉ. मनोरमा शर्मा के शब्दो में यदि कहना चाहें तो कह सकते हैं कि सच्चे शोधार्थियों ने उद्घाटित सत्यों की स्थापना में संकट सहे हैं , अनेक बलिदान दिए हैं। मौलिक एवं मनोवैज्ञानिक समस्याओं का समाधानकर निश्चित रूप से मनुष्य की स्थिति दृढ़ तथा सुख दबनी है। (८)

इस प्रकार शोध का परम् उद्देश्य मनुष्य के जीवन को स्वस्थ, संतुलित, सुखद तथा गतिशील बनाना है। अत: यह कहा जा सकता हैं कि अनुसंधान का प्राथमिक लक्ष्य समाजसापेक्ष, सत्यान्वेषण, ज्ञान–वर्द्धन एवं प्रांजल तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण का सृजनही होता है। कभी–कभी पुरातन तथ्यों पर चलते चलते एक उदासीनता की आशंका सी बनने लगती है जिसे दूर करने के लिए मनुष्य अपने आप एक नवीनता की खोज करने लगता है। या स्पष्ट शब्दों में यूँ कहे कि मनुष्य का आचरण ही है नित नवीन वस्तुएँ खोजना। संगीत में भी नवी नतालाने के लिए वह सदैव तत्पर रहता है।इसी के फलस्वरूप पहले वैदिक संगीत फिर मार्गी और देसी संगीत उसके पश्चातग्राम, मूर्च्छना, जातिगायन, ध्रुपदगायन, राग गायन अपने आप प्रचार में आने लगे। यहां अनुसंधान अपने आप में एक आवश्यकता बन जाती है। संगीत की प्राचीन संस्कृति को बचाए रखने व उसके विषय में उपयुक्त ज्ञान को पाने के लिए अनुसंधान आवश्यक है, एवं समस्याओं का समाधान करने के लिए अनुसंधान की आवश्यकता अपने आप ही सिद्ध हो जाती है।

संदर्भ –:

१). राय, डॉ. सुरेशव्रत– (१९९०) संगीत पत्रिका, जनवरी–फरवरी अंक (पृष्ठ क्रमांक ८६)

२). पंचाक्षरी,भालचंद्र– (१९९०), संगीत पत्रिका, जनवरी–फरवरी अंक (पृष्ठ क्रमांक ०९)

३). शर्मा, डॉ. पंकजमाला– (१९९८), संगीत पत्रिका, जनवरी अंक (प्रष्ठ क्रमांक ०७)

४). शर्मा, विनय मोहन–(१९७३), शोध प्रविधि, नेशनल पब्लिकेशन हाऊस दिल्ली(पृष्ठ क्रमांक ६)

५). Verma, Man Mohan – (1965), An Introduction to Educational Psychological Research, Asia Publication House Bombay, (page.no.01)

६)- Witney, F.L. – (1956), The Elements of Research, Angle Wood Williams, Prentice Hall Inc. (page. No. 20)

७). शर्मा, डॉ.मनोरमा–(१९९०), संगीत एवं शोध प्रविधि, प्रथम संस्करण, परनामी प्रिंटिंग प्रेस अम्बाला। (पृष्ठ क्रमांक २४)

८). शर्मा, डॉ. मनोरमा– (१९९०), संगीतएवंशोध प्रविधि, प्रथम संस्करण, परनामी प्रिंटिंग प्रेस अम्बाला। (पृष्ठ क्रमांक २२)

सोन्याची कांडी

डॉ. साधना शिलेदार
सहयोगी प्राध्यापक
वसंतराव नाईक शासकीय कला
व समाजविज्ञान संस्था, नागपूर
sadhanashiledar@gmail.com

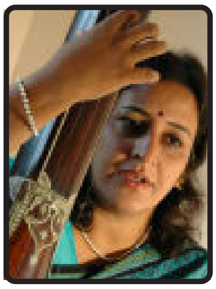

एक रूपकथा आहे. त्या रूपकथेत राक्षसाच्या जादूच्या प्रभावामुळे राजकन्या झोपली आहे. ज्या नगरीत ती आहे ती नगरी सोन्याची आहे. ज्या पलंगावर ती झोपली आहे तो पलंगही सोन्याचा आहे. तिचं शरीर सोन्या–माणकांच्या अलंकारांनी मढलेलं आहे. परंतु बाहेरून येऊन चुकूनही कोणी तिला जागं करू नये म्हणून तिथे कडा पहारा आहे. यात गैर काय आहे? गैर असं आहे की–चैतन्याचाही काही हक्क असतो ना! सचेतनाला जर कोणी म्हटलं की 'तुम्ही कायम ठराविक परीघातच राहा. याच्या बाहेर एक पाऊलही टाकू नका. 'तर याने त्याच्या चैतन्यत्वाचा अपमान होईल. एखाद्याला सुप्त ठेवल्याने देहात प्राण कायम राहतात ही सोय होत असली तरी मनाचा वेग एकतर पूर्णपणे बंद होतो किंवा मन अद्‌भुत स्पप्नांच्या पथहील लक्ष्यहीन अंधःकारात फिरत राहते.

आमच्या देशातल्या गीतिकलांची स्थिती अशाच प्रकारची आहे. मोहरूपी राक्षसांच्या हाती पडून गीती कला खूप काळापासून निद्रेत लीन आहेत. ज्या खोलीत ज्या पलंगावर ही सुंदरी झोपली आहे त्याच्या ऐश्वर्याची सीमाच नाही. चारही बाजूंचे नक्षीकाम अत्यंत सूक्ष्म आणि विलक्षण आहे. अंतः पुरातले रक्षक ज्यांचे नाव आहे 'उस्ताद' त्यांच्या डोळयात अजिबात झोप नाही. बाहेरून येऊन कोणी सुंदरीची झोपमोड करू नये म्हणून त्यांनी शेकडो वर्षांपासून या अंतःपुरातले येणजाण्याचे सगळे मार्ग रोखले आहेत. याचा परिणाम असा झाला की ही राजकन्या सध्या सुरू असलेल्या काळाच्या गळयात माळ घालू शकत नाही आहे. दररोजच्या नवनव्या व्यवहारांशी तिचा काही संबंध नाही. ती स्वतःच्याच सौंदर्यात अडकलेली आहे. स्वतःच्या ऐश्वर्यात मश्गूल आहे. परंतु कितीही ऐश्वर्य व सौंदर्य असले तरी त्यात गतिशक्ति नसली की गतिमान काळ त्याचा भार वाहायला तयार नसतो. एक दिवस दीर्घ उसासा सोडून त्या अचलेला पलंगावर निद्रिस्त सोडून काळ आपल्या मार्गाने निघून जातो. तेव्हा कलेचे काळाशी नाते तुटते. त्यात काळाचेही दैन्य आहे आणि कलेचीही विकलता आहे.

आम्हाला स्पष्ट दिसतंय की आमच्या देशात गानवस्तू (संगीत) गतिशील नाही. उस्ताद म्हणतात, 'गानवस्तू गतिशील नाही. उस्ताद म्हणतात, 'गानवस्तू गतिशील असायलाही नो. ती दिवाणखान्यात बसलेली असेल व तुम्हा लोकांना येऊन समेवर जोराने मान हलवावी लागेल. 'मात्र अडचण अशी आहे की आमचे दिवाणखान्यांचे युग आता लोपले आहे. आता आम्ही कुठे थोडा काळ विश्रांती घेऊ शकत असू तर ती मुसाफिरखान्यांमध्ये. जी वस्तू स्थिर झाली आहे तिच्यासाठी आम्ही स्थिर होऊन राहू शकणार नाही. ज्या नदीत आम्ही वाहत आहोत ती नदी गतिमान आहे. जर तिच्यात नौका चालू शकत नसेल तर कितीही महागडी असली तरी तिचा परित्याग करून आम्हाला पुढे जावेच लागेल. जगात दोन प्रकारचे लोक आहेत. चल आणि

अचल. यामुळे वर्तमान अवस्था चांगली आहे की वाईट याबद्दल मतभेद होतीलही, परंतु मताचे काय घेऊन बसायचे? जिथे कधीकाळी जमीन होती ती जागा आता जलमय झाली असेल तर तिथल्यासाठी चार घोडयांच्या उंची गाडीपेक्षा केळीचा बेडाच जास्त उपयोगी ठरेल. पन्नास वर्षापूर्वी एक काळ असा होता की मोठमोठे गायक दरदरून कलकत्याला यायचे. धनिकांच्या घरी जलसे होत. ठीक समेवर मान हलवू शकणाऱ्यांची संख्या अजिबात कमी नव्हती. आज आमच्या शहरात व्याख्याने सभा यांची वानवा नाही. परंतु गाण्याच्या मैफिली मात्र बंद झाल्या आहेत. संपूर्ण तान—मान लयीने बैठकी गायन पूर्णपणे ऐकू शकतील असे मजबूत श्रोते आज युवकांमध्ये जवळपास दिसतच नाहीत.

त्यांचे 'अनुशीलनच नाही' हे म्हणणे मला मान्य नाही. खरे तर रूची नाही त्यामुळे चर्चा अथवा अनुशीलनच नाही. अकबराचे राज्य आता संपले आहे हे आम्हाला मान्य करावेच लागेल. खूप चांगले होते ते. पण काय करणार? आता ते नाही. तरीही गाण्यात मात्र तेच राजतत्व कायम राहावं असं म्हणणं अन्यायकारक ठरेल. मी असं म्हणत नाही की अकबराच्या शासनकाळातले संगीत लुप्त होईल. परंतु वर्तमान काळाशी संबंध ठेवूनच त्या संगीताला टिकून रहावे लागेल. वर्तमानकाळाची मुस्कटदाबी करून आपलीच अंतहीन पुनरावृत्ती ते करीत राहणार असेल, तर असे होणे शक्य नाही.

साहित्याच्या दृष्टीने उदाहरण दिल्याने माझे म्हणणे अधिक स्पष्ट होईल. आमच्या साहित्य क्षेत्रात कविकंकणचंडी, धर्म मंगल, अन्नदामंगल, मनसा विसर्जन यांचीच पुनरावृत्ती जर ठरलेल्या भावनेने आजपर्यंत होत राहीली असली तर काय झाले असते? पन्नास आणे लोकांनी तर साहित्य वाचणे सोडूनच दिले असते. बंगाली साहित्यातल्या सगळया कथा जर वासवदत्ता, कादंबरीच्या साच्यात अडकल्या असत्या तर 'जातिच्युत' होण्याच्या भीतीने फक्त त्याच कथा शिकवाव्या लागल्या असत्या.

कवि कंकणचंडी, कादंबरी यांचर निंदा मी करीत नाही आहे. साहित्याच्या शोभायात्रेतले त्यांचे त्यांचे स्थान अढळ आहे. परंतु यात्रेचा पथ पूर्णपणे वेढून जर त्यांनी त्याचा आखाडा बनवला असेल तर तो मार्गच व्यर्थ ठरेल, आणि मग त्यांच्या मैफिली मध्ये फक्त लोड तक्केच राहतील माणसे नाहीत.

बंकिम यांनी सातासमुद्रापलिकडच्या राजपुत्रला आमच्या साहित्यरूपी राजकन्येच्या पलंगाच्या उशाशी आणले. त्यांनी तिला सोन्याच्या छडीचा स्पर्श करता क्षणी त्या विजयवसंत लैला—मजनू च्या हस्तिदंती पलंगावरील राजकन्या जागी झाली. गतिमान काळासोबत तिचे शुभमीलन झाले. मग आता तिला कोण थांबवू शकेल?

माणुसकीपेक्षा कुलीनतेनाच श्रेष्ठ मानणारे लोक म्हणतील की, 'हा राजपुत्र तर परदेशी होता' ते आजही म्हणतात— 'ही सर्व मिथ्या माया आहे. वस्तुवाद जर काही असेल तर तो हाच कवि कंकणचंडी आहे. कारण तीच आमची विशुध्द संपदा आहे.' फक्त त्यांचेच म्हणणे खरे असेल तर असे म्हणावेच लागेल की मनुष्याला हा विशुध्द वस्तुवादच पसंत नाही. वस्तू असूनही जी वास्तुगत अथवा अटळ बनत नाही, जी मनुष्याच्या प्राणांच्या सोबतीने चालत राहते, जी मुक्तीचा स्वाद देते तिलाच तर मनुष्य पसंत करतो. विदेशी सोन्याच्या कांडीने ज्या वस्तूला मुक्ती दिली ती वस्तू मात्र विदेशी नाही, ती तर आमच्या प्राणांसारखी आहे. याचा एक परिणाम असा झाला की, ज्या बंगाली भाषेला आणि साहित्याला आधुनिक लोक स्पर्शही करू इच्छित नव्हते त्याच बंगाली भाषेत आज साहित्यव्यवहार होतो आहे आणि याचा लोकांना अभिमानही वाटतो आहे. बारकाईने बघितले तर लक्षात येईल की, गद्य,पद्य

इत्यादि सर्व अंगांमध्ये साहित्याचे रूप व गती पुरातन काळापेक्षा पार बदलून गेली आहे. त्याला 'जातिच्युत' म्हणून नावे ठेवणारे लोकही ते रूप उपयोगात आणतात, ते टाळू शकत नाहीत.

समुद्रापल्याडचा राजपुत्र येऊन सोन्याच्या कांडीने स्पसर्श करून माणसाच्या मनाला जागा करतोय ही घटना माणसाच्या इतिहासात नेहमीच घडत आली आहे. आपली संपूर्ण शक्ती प्राप्त करून त्याला घेण्यासाठी त्याला संकटाशी सामना होण्याची वाट बघणे भागच आहे. कोणतीही संस्कृती स्वत:चे सृजन एकटी करीत नाही. ग्रीक संस्कृतीच्या आरंभी इतर संस्कृती होत्या. ग्रीसला नेहमीच इजिप्त व आशियाचा सहवास मिळाला आहे. द्रविड संस्कृती व आर्य संस्कृती यांचा सहवास व त्यांचे परस्पर संमीलन हे भारतीय संस्कृती निर्मितीचे मूळ साधन आहे. या व्यतिरिक्त ग्रीक, रोमन व पर्शियन संस्कृतीही वेळोवेळी त्यात डोकावत असते. ज्या युगांना युरोपीय संस्कृतीत ज्याला 'पुनर्जन्माचे युग' म्हटले जाते ती सर्व युगे इतर देश व काळाशी झालेल्या प्रभावाची युगे आहे. बाहेरून धक्का मिळाल्यावर माणसाच्या मनाला अंतरंगातील सत्यभावाचा अनुभव येतो. आपल्याभोवतीचा जीर्ण वेढा तोडून स्वत:वरचा अधिकार अधिक पक्का करताना दिसतो तेव्हा त्याचा परिचयही होतो. या अधिकार व्याप्तीला काही लोक वाईट मानतात. म्हणतात की त्यामध्ये आम्ही स्वत:ला हरवणे नव्हे, कारण केवळ वृध्दी किंवा वाढ म्हणजेच स्वत:च्या सीमा पार करणे होय.

सध्या आमच्या देशातील चित्रकलेच्या क्षेत्रात नवजीवनाच्या लाभाची जी लक्षणे दिसतात त्याच्या मुळाशी ही सातासमुद्रापलिकडच्या राजपुत्राची सोन्याची कांडी आहे. गाढ निद्रेचा प्रभाव जोपर्यंत पूर्णपणे ओसरत नाही तोपर्यंत या कांडीच्या स्पर्शाच्या प्रथम अवस्थेत आपल्याला आपल्या शक्तीचा पूर्णपणे अनुभव येत नाही. त्यावेळी अनुकरणच महत्वपूर्ण बनते. पण निद्रेचा हा अंमल ओसरताच आपण स्वत:च्या बळावर चालू शकतो. स्वत:च्या बळावर चालण्याचे एक लक्षण असे आहे की त्यावेळी आपण दुसऱ्यांच्या मार्गावर ही स्वत:च्या शक्तीने चालू शकतो. नानातऱ्हेचे मार्ग आहेत परंतु मत व शक्ती आमची स्वत:ची आहे. जर मार्गाचे वैविध्य थांबवले व एकच वाट उरली तर मार्ग निवडीचे स्वातंत्र्य उरतच नाही. मग गाडीच्या चाकांसारखे चालावे लागते. गाडीच्या चाकांच्या मार्गाला 'चाकांचा स्वत:चा मार्ग' मानून गौरवले तर यापेक्षा अद्भुत प्रहसन दुसरे नाही.

आमच्या साहित्य व चित्रकलेच्या क्षेत्रात समुद्रपल्याडचा राजपुत्र येऊन पोहोचला आहे. संगीताच्या क्षेत्रात मात्र तो अद्याप पोहोचलेला नाही. म्हणूनच संगीताचे क्षेत्र जागृत होण्यास आजही विलंब होतो आहे. आमचे जीवन मात्र जागृत झाले आहे त्यामुळे संगीताचे सिंहासन डळमळीत झाले आहे. मी असे म्हणत नाही की आधुनिकांनी संगीत पूर्णपर्ण त्याजले आहे; परंतु जे संगीत ते वापरत आहेत. ज्या संगीताने आनंद मिळवत आहेत ते संगीत मात्र जातभुलैय्या संगीत आहे. त्यात शुध्द अशुध्द विचार नाही. कीर्तन, बाउल, भटियाली, बैठकी मिळून जे तयार होते आहे ते आचारभ्रष्ट आहे. उस्ताद त्याची निंदा करतात. निश्चितच त्यात निंदनीयता खूप आहे; परंतु अनिंदनीयता हा काही सर्वात मोठा गुण नव्हे. शिवाप्रमाणे प्राणशक्ती अनेक प्रकारच्या विषांना पचवून टाकते. लोकांना आवडते, सगळयांना ऐकावसे वाटते, ऐकतांना पेंग येत नाही ही देखील छोटी गोष्ट नव्हे. संगीताचं पांगळेपण दूर झाले आहे, त्याने चालायला सुरूवात केली आहे. चालणे हे आरंभी कदाचित सर्वांगसुंदर नसेलही, काही हावभाव हास्यास्पद व कदाचित कुरूपही असतील; पण सगळयात महत्वाची गोष्ट म्हणजे त्याने चालायचा सुरूवात केली आहे. बांधलेले

असणे ते मान्य करत नाही. रूढीबरोबरचा नव्हे तर जगण्याबरोबरचा संबंध हा त्याच्यासाठी सर्वात महत्वाचा संबंध आहे. ही गोष्ट आजच्या संगीताच्या विभ्रांत वातावरण गूंजते आहे. उस्तादांचा धूर्तपणा आता संगीताला बांधून ठेवू शकत नाही.

द्विजेंद्रलाल यांच्या सुरांना पाश्चात्त्य सुरांचा स्पर्श झाला म्हणून काही लोक त्यांना हिंदुस्थानी संगातातून बहिष्कृत करू पाहत आहेत. द्विजेंद्रलाल जर हिंदुस्तानी संगीताला विदेशी सोन्याच्या कांडीचा स्पर्श करवीत असतील तर सरस्वती नक्कीच त्यांना आशीर्वाद देईल. 'हिंदुसंगीत' नावाची काही गोष्ट असेल तर तिने आपले स्वरूप राखून चालावे; कारण तो तिचा प्राण नाही, ते तिचे बाहयरूप आहे. त्याने हिंदुस्थानी संगीताला कोणतेही भय नाही. उलट परदेशाच्या सहवासाने त्याला स्वत:च्या भव्य रूपाचाच अनुभव येईल. आज चित्ताशी चित्ताचा मेळ झाला आहे. यामुळे 'सत्य लखलखीत होणर नाही, उलट ते नष्ट होईल' अशी शंका त्यांना वाटते. ज्यांना परंपरेच्या जीर्ण रजईने झाकून ठेवल्याने सत्य टिकेल असे वाटते. त्यांनी वाटेल तितका आरडाओरडा करावा, त्यांना मार्ग सोडून जावेच लागेल. कारण सत्य हे हिंदूचे सत्य नव्हे. कापसाच्या बोळयाने एक–एक थेंब पोथीचे मर्म पाजून त्याला पोसता येत नाही. चहूबाजूंनी होणारे मनुष्य समाजाचे आघात पचवीतच ते आपली शक्ती प्रकट करू शकेल.

ज्येष्ट १३२२ बंगाब्द (गुरूदेव रवींद्रनाथ टागोर यांच्या मूळ बंगाली लेखाच्या श्री मदन लाल व्यास यांनी हिंदीत अनुवाद केलेल्या 'साने की छडी' या लेखाचा स्वैर अनुवाद. हा लेख वाणी प्रकाशनाच्या 'संगीत चिंतन' या पुस्तकातून घेतला आहे. १८६१ ते १९४१ रवींद्रनाथ टागोर यांचा जीवनकाल होता. १३२२ बंगाब्द म्हणजे इस १९१५. शंभर वर्षांपूर्वी गुरूदेव रवींद्रनाथ टागोर यांनी व्यक्त केलेले विचार आजही सुसंगत आहेत)

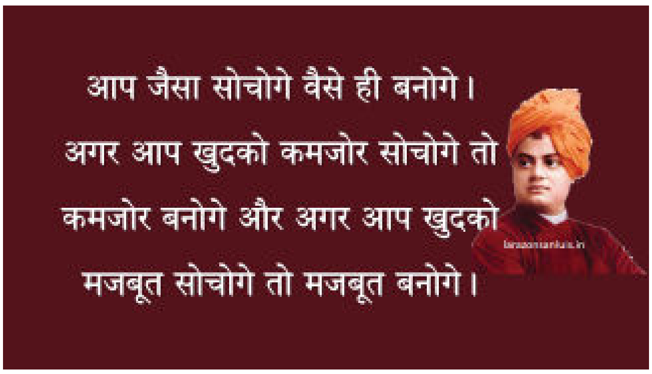

भारतीय शास्त्रीय संगीत का स्वरूप और कवी नंददास के काव्य में उसकी अभिव्यक्ति

डॉ. सुनील कुमार तिवारी
विभागाध्यक्ष
स्नातकोत्तर संगीत विभाग
सुन्दरवती महिला महाविद्यालय
भागलपुर, तिलका माँझी भागलपुर
विश्वविद्यालय, भागलपुर.
संपर्क सुत्र– ९४३१८७१४८०

सुर – सुर का अर्थ स्वर होता है। किसी भी बंदिश की सुर उसके स्वरों पर निर्भर करती है। उसका स्वरूप उनके स्वरों पर निर्भर करती है। स्वर से राग बनती है। सुर का प्रारम्भिक रूप स्वर है। इसलिए स्वर को परिभाषित करना अनिवार्य होगा –

साधरण बोल – चाल की भाषा में संगीतोपयोगी आवाज को स्वर कहते है। अर्थात जो संगीतोपयोगी आवाज अपने आप में मधुर लगती है। उसे 'स्वर' कहते है।

स्वयं यो राजते नाद: स स्वर: परिकिर्तित:।

अर्थात् जो नाद स्वयं शोभित है एंव मधुर हो उसे स्वर कहते है।

स्वर की परिभाषा ''संगीत रत्नाकर'' नामक संगीत ग्रंथ में पृष्ठ ४० पर इस प्रकार दी गई है।

श्रुत्यनन्तरभावी य: स्निग्धोनुरणनात्मक:।
स्वतोरञ्जयति श्रोतृचितं स स्वर ऊच्यते।।(२)

अर्थात् श्रुति के ही बाद में लगातार होने वाली सुरीला और मधुर ध्वनि जो तेल की धार के भाँति अटूट एंव गूँजदार हो और जो स्वत: ही अर्थात् अपने आप बिना किसी अन्य वस्तु की सहायता के सुनने वालो का मधुर लगे उसे स्वर कहते हैं। स्वर की परिभाषा समझने के लिए हमे तीन बातों का ध्यान रखना जरूरी है।

(१) आवाज संगीतोपयोगी हो।
(२) आवाज स्थिर और गूँजदार हो।
(३) आवाज स्वत: मधुर हो।

स्वर की परिभाषा : –

जो संगीतोपयोगी आवाज स्थिर और गूँजदार होती है और जो सुननेवालों को अपने आप मधुर लगती है उसे स्वर कहते है।

''संगीत बोध'' में डॉ. शरचन्द्र श्रीधर परांजपे जी ने स्वर की विवेचना इस प्रकार की है : – स्वर श्रुतियों से बनते हैं। श्रुति सूक्ष्मतर ध्वनि है, जिन्हें पाश्चात्य संगीत में माइक्रोटोन कहते है। प्रत्येक स्वर को बनने में सूक्ष्मतर ध्वनियों का बड़ा महत्व है। स्वरों की गूंज या अनुरणन के लिए श्रुतियों का होना आवश्यक है। श्रुति स्वयं रंजक नहीं होती, परन्तु स्वर को रंजक बनाने में सहायता करती है। श्रुति तरल है और स्वर स्थिर होते है। कुछ रागों में आरोह करते समय कुछ स्वर आगे वास्तविक स्थान से कुछ चढ़ें हुए रहते हैं और अवरोह में उतरते हुए सुनाई पड़ते है। इसका तात्पर्य उन स्वरों के श्रुतियों की तरलता से है। गमक एंव स्वर संगती जैसी क्रियाओं में यह तरलता, स्पष्ट हो जाती है। गायन की अपेक्षा वाद्यों में इस तरलता का स्पष्ट साक्षात्कार होता है। भीमपलासी, अड़ाना इत्यादि रागों में आरोह के समय कोमल नी की गति तार पड़ज की ओर होती है और अवरोह में वहीं उतरा हुआ सुनाई देता हैं। ये ही श्रुतियाँ जब किसी एक स्थान पर स्थिर हो जाती है तो वह 'स्वर' बन जाती है। श्रुति स्वतंत्र रूप में रंजक हो यह आवश्यक नहीं इसीलिए अनेक श्रुतियाँ वर्ज्य या निरर्थक मानी जाती है।(३)

ऐसी कोई ध्वनि जो सुनी न जा सकती हो, श्रुति नहीं कहला सकती, उसका 'स्वर' होना तो दूर की बात है। स्वर के लिए श्रुति सम्पन्नता और अनुरणन दोनों आवश्यक है। श्रुति केवल सुनी जा सकती है परन्तु उसमें अनुरणन का अभाव हो ता श्रुति नहीं होती। श्रुति में अनुरणन होने पर वह स्वर बन जाती है। श्रुतियाँ असंख्य है परन्तु संगीत की आवश्यकता के अनुसार एक सप्तक में केवल २२ श्रुतियाँ ही मानी जाती हैं। इन श्रुतियों के नाम स्वतंत्र रूप से नहीं दिये जा सकते हैं। श्रुति स्वर से अलग होकर सुनी नहीं जा सकती। उसका स्वर के साथ अभिन्न सम्बन्ध रहता है और वह किसी स्वर के साथ या संदर्भ में ही सुनी जा सकती है। उदाहरणार्थ, सा अर्थात् षड्ज की चार श्रुतियाँ परम्परा से मानी गई हैं। षड्ज सुस्वर लग जाने पर कहा जाता कि वह चतु:श्रुति है परन्तु उसकी चारों श्रुतियों को अलग – अलग दिखाने की बात यदि की जाय तो सर्वथा असम्भव है। आचार्य भरत तथा शारंगदेव ने जो श्रुतिदर्शन या सारण की व्यवस्था बताई है, वह केवल यह दिखाने के लिए कि श्रुति स्वर का सुक्ष्मतम उपादान है और ऐसी ध्वनियाँ एक सप्तक में केवल २२ ही हो सकती है। श्रुति की सार्थकता स्वर में ही हैं।

एक सप्तक में शुद्ध और विकृत मिलाकर कुल १२ स्वर माने जाते हैं जिसमें ७ शुद्ध ४ कोमल और एक तीव्र स्वर। सातों शुद्ध स्वरों को कुछ – कुछ दूरियों में बाँटा गया है। भरत के ''चतुश्चतुश्चतुश्चैव'' सिद्धान्त के अनुसार २२ श्रुतियों में सातों स्वरों को बाँटा गया हैं। सा—म—प = ४+४+४ = १२

रे—ध = ३+३ = ०६

ग—नी = २+२ = ०४ = २२ श्रुतियाँ

सातों स्वरों का नाम क्रमशः षड्ज, ऋषभ, गंधार, मध्यम, पंचम, धैवत, और निषाद जिसको सा, रे, ग, म, प, ध, नि,। सां चौथी श्रुति पर, रे सातवीं श्रुति पर, ग नवीं श्रुति पर, म तेरहवीं श्रुति पर, प सतरहवी श्रुति पर, ध बींसवीं श्रुति पर, और नि बाइसवीं श्रुति पर। किसी भी पद या रचना को संगीतमय बनाने के लिए इन्हीं स्वरों की आवश्यकता होती है जिसे सुर कहते है और हम यह कह बैठते है कि इस पद का सुर बहुत अच्छा है।

लय :— समय के किसी भी भाग की समान चाल को लय कहते हैं। जैसे यदि हम ऐक से पाँच तक लय में गिनें तो समान चाल से कहेंगें एक, दो, तीन, चार, पाँच, ऐसा कहते समय हम बीच में न कहीं पर रूकेंगे और न कहीं पर चाल को धीमा या तेज करेंगे बल्कि एक समान चाल से लगातार एक से पाँच तक कह जाएँगे। जिस प्रकार एक घड़ी में सेकेण्ड की आवाज एक समान चाल से टक टक टक टक हुआ करती है और बीच में न कहीं पर धीमी और न कहीं पर तेज होती है उसी प्रकार गाने – बजाने में भी होता है। इसी समान चाल को लय कहते हैं। लय मुख्यतः तीन प्रकार की होती है :

(१) विलम्बित – लय

(२) मध्यलय और

(३) द्रुत —लय

(१) विलम्बित – लय : – जिस लय की चाल बहुत धीमी होती है उसे विलम्बित लय कहते हैं। उसको 'ठाह – लय' या ठाह भी कहते हैं।

(२) मध्यलय : — जिस लय की चाल 'विलम्बित – लय' और द्रुत – लय के बीच की चाल होती है उसे 'मध्यलय' कहते हैं। 'विलम्बित लय' से दुगुनी तेज और द्रुत – लय से दुगुनी धीमी लय को मध्यलय कहते हैं। संक्षेप में विलम्बित – लय से दुगनी तेज लय को मध्यलय और मध य – लय से दुगुनी तेज लय को द्रुत – लय

कहते हैं।

(३) द्रुत —लय — जिस लय की चाल तेज अर्थात् विलम्बित — लय से चौगुनी तेज होती है उसे द्रुत — लय कहते है।

ताल — भारतीय संगीत में ताल — परम्परा प्राचीन काल से चली आ रही है। भारतीय तालों का स्रोत वहीं है, जो विदेशी तालों का है। ताल लय को दर्शाने की क्रिया है। संगीत में विभिन्न स्वरों के बीच जो अन्तराल होता है। उसको नापने के लिए ताल की क्रिया आरंभ होती है। लय एक नैसर्गिक प्रक्रिया है जिसका विस्तार समस्त प्रकृति में सर्वत्र पाया जाता है। स्वयं मानव का जीवन, श्वास — प्रश्वास की क्रिया पर निर्भर करता है, उसमें लय स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। उसकी लय जरा सी बिगड़ जाने पर मनुष्य का जीवन खतरे में पड़ जाता है। हृदय की गति और नाड़ी का चलन इस लय — तत्व का उत्कृष्ट उदाहरण है। जिस नियमित गति से हृदय का स्पदन होता रहता है या नाड़ी के ठोके पड़ते रहते हैं, वही नियमित गति लय का मुख्य लक्षण है।

लय के जन्म के साथ ही आवश्यकता पड़ी और ताल का जन्म हुआ। लय को काल तथा क्रिया से नियंत्रित करने पर ताल का उद्भव होता है। लय स्वयं एक व्यापक एंव अखण्डित क्रिया है। इसको वांछित अन्तराल में बाँधकर क्रिया से दर्शाना ही 'ताल' कहलाता है। ताली शब्द जो ताल से निकला है, लय को दर्शाने की क्रिया का सूचक है, यह क्रिया सशब्द और नि:शब्द रहती थी। सशब्द क्रिया में ताली जैसी हाथ पर आघात करने की क्रिया थी और नि:शब्द में हाथ खाली फेंकेने जैसे क्रिया थी।

सामवेद के संगीत में हाथ की उँगलियों पर स्वरों को अन्तराल दर्शाये जाते थे। इसी का विकास आगे चलकर हाथ की विभिन्न क्रियाओं में हुआ। रामायण तथा महाभारत में ऐसे लोगों का उल्लेख मिलता है जो ताल दर्शाने तथा मात्रा गिनने के लिए नियुक्त होते थे। इन क्रियाओं के कारण गीत तथा गत की प्रत्येक मात्रा की गणना हो सकती थी और इसके माध्यम से गीतों की बन्दिश भी सुरक्षित रह सकती थी। भरत के नाट्यशास्त्र से यह स्पष्ट हो जाता है कि ताल की प्रत्येक मात्रा के लिए सशब्द या नि:शब्द में से कोई क्रिया अवश्य की जाती थी। ध्रुवा, शम्या, ताल और सन्निपात सशब्द क्रियाएँ थी। ध्रुवा में चुटकी बजायी जाती थी। शम्या में दाहिने हाथ से बायें हाथ पर आघात, ताल में बायें से दाहिने पर आघात और सन्निपात में दोनों हाथ से ताली बजाई जाती थी। नि:शब्द में आवाप, निष्काम, विपेक्ष और प्रवेश की क्रियाएँ थीं। आवाप में अँगुलियों को बन्द किया जाता था। निष्काम में अँगुलियाँ खोली जाती थीं, विक्षेप में अँगुलियाँ को दाहिनी ओर फेंका जाता था और प्रवेश में हाथ को नीचे की और ले जाया जाता था, तत्कालीन धुवा — गीत जहाँ दीर्घ और अनेक मात्राओं से युक्त होता था, वहाँ इन क्रियाओं का संकेत अवश्य किया जाता था संगीत रत्नाकर के समय तक इसके अतिरिक्त सर्पिणी कृष्य, पद्मनी, विसर्जित जैसी सात हस्त—क्रियाएँ प्रचार में आई, जिनका उपयोग देशी तालों में किया जाता था। यह परम्परा उत्तर तथा दक्षिण दोनों में किसी न किसी रूप में आज भी सुरक्षित है। ध्रुपद, धमार तथा तराना गाते समय गायकों द्वारा आज भी मात्राओं की गणना अँगुलियों पर की जाती है, यह तथ्य सर्वविदित है। दक्षिण में ताल की प्रत्येक मात्रा को हाथ पर दिखाने की परम्परा आज भी सुरक्षित है।

मात्रा तथा कला : — संगीत शास्त्र में आरम्भ से मात्रिक छन्दों का प्रचलन रहा। मात्रिक छन्द वह है जिसमें गीत की बंदिश मात्राओं पर निर्भर रहती है न कि अक्षरों पर। काव्य की रचना वर्ण

या अक्षरों के अनुसार चलती रही परन्तु गीत की रचना तथा गायन के लिए मात्रिक छन्द अधिक योग्य माने गये। मात्रा, समय को नापने का न्यूनतम परिणाम या पैमाना है। मात्राओं के योग को कला कहा जाता है। प्राचीन शास्त्रकारों ने मात्रा की कला विधि निर्धारित करने का भी प्रयत्न किया वेद के शिक्षा ग्रंथों में इसका परिमाण पक्षियों की ध्वनि के अनुसार दिया गया है।

उदाहणार्थ, चाष नामक पक्षी एक ध्वनि जिस समयावधि में करता है, उसकों १ मात्रा का समय माना गया। काक नामक पक्षी की ध्वनि दो मात्राओं के बराबर मानी गयी, मयूर की तीन मात्रा और नेवले की अर्ध मात्रा के बराबर मानी गयी।

संस्कृत के व्याकरणकारों ने ह्स्व, दीर्घ और प्लुत स्वरों के उच्चारण को क्रमश: एक, दो और तीन मात्राओं को माना है।

मात्रा की कालावधि : – आज कल इन विधियों के माध्यम से प्राचीन मात्रा का समय निर्धारित करना सम्भव नहीं। मात्रा की कालावधि को निश्चित रूप से बताने के लिए शास्त्रकारों ने कालांगों का निरूपण क्षण, लव, काष्ठा, निमेष आदि सूक्ष्म काल भेदों में किया। प्राचीन काल में दो मिनट में जो शब्द या स्वर उच्चारण किया जाता था उसे एक मात्रा माना जाता था। प्राचीन काल में मात्रा का यह परिणाम लय की गति निर्धारित करने के लिए उपयोगी था। वर्तमान में मात्रा का कोई परिणाम निश्चित नहीं है। वह सर्वथा कलाकार के इच्छा पर निर्भर होता है। इसी कारण एक गायक ख्याल अत्यन्त धीमी गति से गाता है, तो दूसरा अपेक्षाकृत कम धीमा पसन्द करता है। गायक अथवा नर्तक अपनी – अपनी इच्छानुसार विलम्बित, मध्य और द्रुत लय का कालमान स्थिर करते हैं। कुछ गायक, जिनका स्वर और स्वास पर अधिकार है, विलंबित के अतिविलंबित बनाकर गाते हैं। दक्षिणी संगीत में ताल की गति उतनी विलंबित नहीं होती जितनी उत्तरी भारतीय संगीत में हैं। इस भिन्नता का कारण यह है कि मात्रा का प्रमाण न तो स्थिर है, न एक सा ही है। नये रागों का निर्माण जिस प्रकार कलाकार की प्रतिभा पर निर्भर रहता है उसी प्रकार नये तालों का निर्माण भी कलाकार की प्रतिभा तथा कुशलता के परिणामस्वरूप होता है। ताल के अन्तर्गत द्रुत, लघु, गुरू और प्लुत अक्षरों के उलट – पुलट से असंख्य तालों का निर्माण होता है। जिसके कारण किसी भी रचना को स्वरबद्ध करना आसान होता है।

राग:— वह विशेष प्रकार की ध्वनि जो स्वरों के विशेष क्रम से उत्पन्न हुई हो और एक भावानात्मक वातावरण का निर्माण करके मन को प्रसन्न करती है राग कहलाती है।

स्वर रचना अथवा धुन का वह समूह जो संवादी सिद्धान्त का पालन करते हुए अपना विशिष्ट प्रभाव यानी, रंजकता, श्रोता के उपर डाले उसे राग कहते है। वह स्वर समूह जिसमें अन्य बातें होते हुए भी रंजकता नहीं हो तो वह राग नहीं हो सकती। प्राचीन काल में इन्हीं रागों को जातियों के नाम से जाना जाता था यानि जातियाँ रागों की पर्यायवाची थी। जो जाति के लक्षण थे वे राग के भी थे। जातियाँ ऐसी धुने थीं, जिनका उद्‌गम लोक – संगीत में था। आवश्यक संस्कार तथा परिष्कार के कारण इनको शास्त्रीय संगीत में स्थान प्राप्त था। वैदिक युग में प्रचलित तथा लोकप्रिय धुने इसकी आधार थी। जातियों के इसी प्राचीनता के आधार पर ही उनकी गणना 'मार्ग' संगीत में की गई है। रामायण – काल में सात शुद्ध जातियाँ प्रचार में थी और उनको क्लासिकल या उच्च श्रेणीय संगीत में बराबर स्थान प्राप्त था।

भरत के नाट्‌यशास्त्र में जातियाँ १८ थी जिनमें ७ शुद्ध और ११ विकृत थी। इन जातियों के अतिरिक्त ७ ग्राम रागों का भी प्रचार था, जैसे

— मध्यम ग्राम, षड़ज साधारित, पंचम, कैशिक, षाडव तथा कैशिक मध्यम। जाति उच्च संगीत की वस्तु थी, राग लोक संगीत की चीज थी। दोनों का उद्देश्य, गठन तथा गायन शैली, सैद्धान्तिक दृष्टि से समान होने के कारण लोक संगीत के रागों ने जातियों का स्थान ग्रहण कर लिया।

राग भारतीय संगीत का प्रधान वैशिष्ट्य है और इसका आधार मेलाडी है जबकि पाश्चात्य संगीत का आधार हारमनी है। मेलाडी के गायन — वादन के अन्तर्गत किसी विशिष्ट स्वरावली को लेकर स्वरों का ऐसा क्रमिक विकास किया जाता है कि सभी स्वर स्थायी स्वर सा से अपना नाता जोड़ लेते हैं। विभिन्न स्वरों का महत्व इसी में रहता है कि वे स्थायी स्वर के साथ संवादी सम्बन्ध स्थापित कर लें।

संगीत का लक्ष्य हमेशा से रस परिपाक रहा है। इसीलिए हम देखते है कि प्राचीन संगीताचार्यो से लेकर शारंगदेव तक सभी विद्वानों का उद्देश्य संगीत के द्वारा रस परिपाक ही है, वे बड़ी खोज के बाद यह निर्णय कर पाये थे कि किस रस की अभिव्यंजना के लिए किस स्वर का प्रयोग आधार स्वर के रूप में करना चाहिए। इसी कारण से भरत से लेकर शारंगदेव तक सभी आचार्यों ने अपनी जातियों और रागों में उससे संबंध रस की चर्चा की है और अंश स्वर की प्रधानतया रस का अभिव्यंजक बताया है।

भरतमुनि ने अंशस्वर के दस लक्षण बताए हैं जिसमें राग का आवास हो। अर्थात् जिसमें राग रहता हो, (२) जो रस की अभिव्यक्ति का मुख्य उपकरण हों, (३ —४) जिसकी मंद और तार सप्तक में पाँच — पाँच स्वरों तक गति हो, (५) जो अन्य स्वर समूहों से परिवेष्टित हो (६) जिसके संवादी और अनुवादी स्वर भी बली हों, (७,८,९,१०) जो ग्रह, अपन्यास, सन्यास और विन्यास के प्रयोग के समय उपस्थित रहता हो। अन्तत: राग शब्द की उत्पत्ति ''रंज्'' से हुई है जिसका अर्थ होता है प्रसन्न करना। इसके अन्तर्गत तीन बातों का होना आवश्यक है।

(१) ध्वनि या आवाज की विशिष्ट रचना का होना।

(२) 'स्वर' और 'वर्ण' का होना और

(३) रंजकता का होना।

लोक रूचि में परिवर्तन होते गया तो यह आवश्यकता होने लगी कि किस ध्वनि अथवा राग को किस भाव के लिए माना जाय। यदि इसके लिए कोई वर्गीकरण कर दिया जाय तो अधिक उत्तम रहेगा। इस कारण जाति वर्गीकरण ग्राम राग, वर्गीकरण, पुल्लिंग राग, स्त्री राग, नंपुसक राग; भाषा राग, विभाषा राग, उपांग राग, अंतर्भाषा राग, रागांग, क्रियांग, शुद्ध, छायालग और संकीर्ण राग, राग — रागिनी पद्धति, मेल पद्धति, रांगाग राग वर्णीकरण जैसे अनेक वर्गीकरण हुए।

राग — रागिनी — वर्गीकरण : —

शाके संवत् १३६२ अर्थात् सन् १४४० ई० में लिखा गया एक ग्रंथ 'नारद' नामक व्यक्ति का 'पंचमसार संहिता' है। (इसकी पांडुलिपि बंगाल की एशियाटिक सोसाइटी के पास है।) इसमें सर्वप्रथम राग — रागिनियों के ध्यानों के श्लोक दिए हैं तथा 'मालव, मल्लार', श्री, वसंत, हिंडोल आदि रागों को पुरूष जैसे वस्त्रों में बताया है। शेष को रागिनी शब्द से सम्बोधित किया है। इससे ऐसा प्रतित होता है कि राग—रागिनी वर्गीकरण का आरम्भ पंद्रहवी शताब्दी में हुआ परंतु पाँचवी शताब्दी में लिखे गए एक प्रसिद्ध ग्रंथ ''पंचतंत्र'' मे छत्तीस रागों गए जाने का संकेत मिलता है। ''इसमें एक गदहा और एक गीदड़ की कहानी आती है जिसमें गधा रात्रि की सुन्दरता को देखकर गीदड़ से पूछता है कि वह गाना चाहता है। अत: कौन सा राग गाए? गीदड़ के यह कहने पर कि''

वह संगीत के बारे में क्या जानता है?'' गधा अपने संगीत ज्ञान का परिचय देते हुए कहता है कि मैं तुम्हें संगीत शास्त्र के बारे में बताता हूँ कि सात स्वर है, तीन सप्तक होते है इक्कीस मूर्च्छनाएँ है, गायन के छह भेद है, नौ रस है और छत्तिस वर्ण है।'' यह वर्ण शब्द को राग नहीं समझ सकते इसलिए इसे रागिनी समझना उचित होगा। अत: पंद्रहवीं शताब्दी से सत्तरहवीं शताब्दी के मध्य जो वर्गीकरण हुआ वह राग – रागिनी, पुत्र, पुत्र बधु के आधार पर हुआ और इस वर्गीकरण के मत 'भरत' 'हनुमान' 'सोमेश्वर' और कल्लिनाथ कहलाए ।

पुष्टिमार्गीय संगीत में प्रयोग किए जाने वाले रागों की सूचि:– देवगंधार, रामकली, भैरव, मालकोश, विलावल, ललित, सूहा, तोड़ी, आसावरी, धनाश्री, सारंग, काफी, कान्हरा वसंत, मल्हार, सारंग, रायसा, हमीर, विहाग, केदार मारू, नंट, सोरठ, ईमन, खमाज, पूर्वा, गौरी, जैतश्री, जैजैवंती, अड़ाना, मालव, पंचम, षट, शंकराभरण, कर्णाटकी, विहागड़ा, जंगल, झिंझोटी, सुधराई, परज इत्यादि।

शैली : – वैष्णव सम्प्रदाय ने अपने धर्म का प्रचार प्रसार करने के लिए राधा – कृष्ण और बालकृष्ण की लीलाओ के पदो को बडे रसमय और भावमय तरीकों से संगीत के सुर, लय और ताल में संजोकर जनता के सामने रखा। जिसके कारण भक्ति संगीत का स्वरूप जन – जन तक पहुँचा। इनके अनेकों कीर्तन पद्धतियों और मंत्रों में जो शास्त्रीय संगीत का प्रभाव था उसे आज भी भजन आदि में देखा जा सकता है। इन गीतों की एक मुख्य बात थी कि इन संतों ने जो पद – गायन क्रिया वह भले ही विष्णु पद के नाम से प्रसिद्ध था लेकिन उनके ढ़ंग पूर्णत: ध्रुवपद, धामार शैलियों पर था। ''भक्ति परक पद या विष्णु पद शास्त्रीय संगीत की ध्रुवपद – पद्धति के जनक है।'' अर्थात् भारतीय संगीत शुद्ध और शास्त्रोक्त कहलाई जाने वाली '' ध्रुवपद – धामार'' जैसी गायन शैलियों का विकास हवेली – संगीत या देवालयों में गाए जाने वाले कीर्तनों और भजन से हुआ। 'पुष्टिमार्गीय वैष्णव मन्दिरों का संगीत' पूर्णत: ध्रुवपद धामार शैलियो पर ही आधारित था। तत्कालिन जितने भी इस परम्परा के संत थे वे जो भी गाते थे उसका आधार ध्रुवपद और धामार ही था। हिन्दुस्तानी संगीत के मध्यकाल में ध्रुवपद धामार काफी प्रचलित था। कृष्ण का गुणगान भक्ति भरक पूरा ध्रुवपद में होता था और धामार के अन्तर्गत राधा – कृष्ण के होरी के लीलाओं का वर्णन होता था।

ध्रुवपद गायन शैली के आविष्कारक – ग्वालियर के राजा मानसिंह तोमर का माना जाता था। उनका काल १५४३ वि० स० से १५७६ वि० स० तक माना जाता है। ये बातें औरंगजेब बादशाह का काश्मीर का सुबेदार ने ''मानकुतहल'' में कहीं है उसका नाम था फकीरूल्ला इसने ''मानकुतूहल'' का फारसी में अनुवाद किया था। ''राजा मान सिंह ग्वालियर का शास कथा और उसका संगीत शास्त्र विषयक ज्ञान तथा कीर्ति अनुपम है। कहते हैं कि सबसे पहिले ध्रुवपद का आविष्कार राजा मान सिंह ने किया था।''(४)

राजा मान सिंह के काल में पुष्टिमार्गीय संगीत का सुत्रपात माना जाता है। उस समय स्वामी हरिदास वृन्दावन में रहते थे और तानसेन आगरे में। मथुरा, वृन्दावन, आगरा, ग्वालियर का रूप में ध्रुवपद शैली से प्रभावित था। उस समय ये लोग कुंभनदास जी के प्राय: समकालीन थे। अकबर के दरबार में जितने गायक थे वे सब के सब ध्रुवपदिये थे। उस समय के पदों की प्रथम तूक के पाश्चात ।। धृ ।। अथवा ।। ध्रुव।। ऐसा लिखा जाता था। इससे भी साबित होता है कि उस समय के सारे कीर्तनों का आधार ध्रुवपद और धामार ही था।

ध्रुवपद और विष्णुपद दोनों में कुछ विद्वान

विषमता बताते है। कुछ कहते है कि पुष्टिमार्गीय कीर्तन का आधार विष्णुपद है कुछ कहते है कि नहीं ध्रुवपद था ध्रुवपद शैली न मानने की ऐसे लोगों के पास एक ही दलील है '' आइने अकबरी '' के अनुसार उस समय जो ध्रुवपद गाता था उसे कलावंत और जो कीर्तनियाँ थे उसे विष्णुपद गायक कहते थे। लेकिन विष्णुपद और ध्रुवपद में मतभेदों के साथ एक बात स्पष्ट था कि '' विषय – वस्तु'' की दृष्टि से अष्टछाप आदि कवियों की रचना को विष्णुपद के नाम से भले ही पुकारा गया हो लेकिन गायन शैली की दृष्टि से वह ध्रवपद शैली में ही निबद्ध होकर गाया जाता है क्योंकि ध्रुवपद और विष्णुपद में मात्र विषयवस्तु का अन्तर बताया गया है। राजा मान सिंह ने (जो हिन्दुस्तानी गान विद्या और साहित्य शास्त्र को खुब जानता था) लोगों को आसानी से समझने के लिए गवालियर की बोली में नई चाल का गाना निकाला जिसके तीन दरजे रखे (१) विशान पद श्री कृष्ण की तारीफ में (२) जो बड़े आदमियों की तारीफ में हो। (३) ध्रुवपद जिसमें नेह प्रीत की बातें हो।(५)

अर्थात् ध्रुवपद गीत के आधार सांस्कृतिक दृष्टिकोण से भी बहुत है। ध्रुवपदों का आधार वर्ण्य विषय अधिकतर नबाबों और राजाओं की प्रशंसा तथा ईश्वर की भक्तिपूर्ण स्तुतियाँ है। इसके अलावे अनेक धार्मिक, सामाजिक, रीति –रिवाजों, वेदान्त के सिद्धान्तों तथा भक्तिमार्ग के पंथों और विभिन्न पर्वो का विस्तृत रूप प्राप्त होता है। हजारों वर्षो की सांस्कृतिक परम्परा की धरोहर ध्रुवपद शैलियाँ है। इस शैली के वर्ण्य विषय वस्तुत: ईश्वरोपासना एंव उनके गुणों का गान हैं। स्तुति परक गीत हैं। भारतीय संगीत की अध्यात्मिक आत्मा के दर्शन ध्रुवपद गीतों में होते हैं। रागों को देवता के रूप में मानते हुए, उनकी अवतारणा के लिए ईश्वर नाम के अक्षरों कों लेकर आलाप करना ध्रुवपद गीत की पहचान है। शुद्ध और स्पष्ट शब्दोच्चारण और स्वरोच्चारण ध्रुवपद की विशेषता है। इसलिए ध्रुवपद, शब्द और स्वर प्रधान गीत शैली मानी गई है। ध्रुवपद, स्वर, लय, शब्द, ताल प्रधान, गीत शैली होने के कारण यह एक मर्दाना गीत समझा जाता है। ध्रुवपद में मुख्य रूप से चार बानियाँ है। ये क्रमश: गोबरहारी बानी, खंडारी बानी, डागुर बानी और नोहार बानी। बानी का मतलब ध्रुवपद गायकों की अलग – अलग या रितियाँ (बानी) थी। चारों बानियों के चार कलाकार थे। तानसेन, ब्रजचन्द, राजा समोखन सिंह और श्री चन्द। कुछ विद्वानों के अनुसार ' बानी ' वाणी शब्द का अपभ्रंश रूप है अत: बानी का सम्बन्ध शब्दोच्चार से होने के कारण इसे वानी कहा गया। संगीत में स्वरोच्चार के साथ शब्दोच्चार का महत्व है और स्वर, शब्द की प्रधानता धुव्रपद गीतों में होती है। अलग – अलग कलाकारों की कंठगत विशेषता, संस्कार, स्वर, शब्दोचार की भिन्नता होने के कारण ध्रुवपदियों की अलग – अलग रीति या (स्टाइल) होने से इन वानियों का प्रचार हुआ।

पुष्टिमार्गी संगीत में ध्रुवपद के चार भागों का आलाप करके गाना प्रारंभ होता है। ध्रुवपद के चारों चरणों स्थायी, अन्तरा, संचारी, आभोग में आलाप होता है।

नंददास के रचनाओं का गायन ध्रुवपद शैली में गाया जाता था उसके चार चरण थे, स्थायी अन्तरा, संचारी आभोग, उनकी बानियाँ भी अलग – अलग होती थी। इन गीतों में चारताल, तीव्रा, सूलताल ब्रह्मताल, इत्यादि तालों में ध्रुवपद के गीतों को गाया जाता है।

हवेली संगीत की विशेषताओं में स्पष्ट अंकित है कि हवेली संगीत के पद और कीर्तन उच्चकोटी के ध्रुवपद और धामार के रूप में विकसित हुआ है। धमार गायन भी ध्रुवपद शैली

पर रचित एक गान शैली है। जिसमें होरी धूम — धाम के साथ जिस गीत का गायन होता है उसे धमार शैली कहते है। चौदह मात्रा के धमार गायन शैली में अधिकांशत: होरी सम्बन्धी पदों की रचना होती है। ध्रुवपद की तरह ही इसमें भी लयकारी प्रधान गीत होता है। होली के दिनों में पखवज, मंजीरा, झाल आदि के साथ इस गीत को बड़े उत्साह और उमंग से गाया जाता है।

धमार गायकी एक रंगारंग परम्परा की गायन शैली हैं। इसी कारण 'धमार' को धमाल — धमार और धमारी के नाम से भी पुकारा जाता है। धमाल का अर्थ धमा या चौकड़ी करना है। धमार या धमाल शब्द की व्युत्पति संस्कृत भाषा 'धम्' धातु से हुई है, इस धातु के अच् प्रत्यय लगाने पर धमाल या धमार शब्द बनता है। स्व० आचार्य बृहस्पति के अनुसार — ''धमार की उत्पत्ति हुई है जिसका अर्थ हैं सुलगना, भड़काना इत्यादि। इस शब्द की व्युत्पत्ति धम इव जृच्छति, धम + कृ+ अच् हो सकती हैं। जिसका अर्थ है गान का वह प्रकार, जो प्रेरित करता हुआ अथवा फड़काता हुआ चले। धमा—चौकड़ी, धूम—धाम और धमा धम जैसे शब्दों में संस्कृत की धातु 'धम'का प्रभाव है।''(६)

धमार एक सामूहिक गीत है जो टोलियों में गाया जाता है। होली के दिनों में होली खेलने वाली टोलियाँ रंग खेलती हुई धमार गाती है। आज भी ब्रज के गोकुल बरसाने में होली गीत के रूप में धमारों का गायन बड़े उल्लास से किया जाता है।

धमार गीतों का वर्ण्य विषय होली से संबंधित रहता है। जैसे होरी खेलेई बनैगी, रूसौ अब न बनैगी अर्थात् अब तो होली खेले ही बनेगी रूठने से कुछ नहीं होता।

धामार गीत के भी चार खण्ड होते है। स्थायी, अन्तरा, संचारी और आभोग। यह गीत लयकारी प्रधान होता है। इसमें भी दुगुन, तीगुन, चौगुन और आड़ लय होता है। धामार के गीत चौदह मात्रा में पखावज पर बजते है। पुष्टिमार्गीय संगीत में होली आंनदोत्सव का पर्व माना जाता है। यह फाल्गुन शुक्ल पक्ष पूर्णिमा को मनाया जाने वाला पर्व है। यह उत्साह और उमंग का पर्व है। होली के आंनदोत्सव का वर्णन अष्टछाप कवियों ने सबसे अधिक किया है। जिसमें फाल्गुन के रंग अबीर गुलाल आदि का वर्णन रहता है। फागलीला के अन्तर्गत नंददास की गोपियाँ नाना प्रकार के वस्त्राभूषण पहने हाथों में कनक — पिचकारियाँ लेकर रास्ते में केसर तथा बूका — वंदन उड़ाती हुई कृष्ण के पास जाती हैं कृष्ण सखाओं सहित हाथ में कनक — पिचकारी लेकर तत्पर हो जाते हैं। गोपियों पर पिचकारी में रंग भरकर डालते है। चारों ओर गुलाल घुमड़ने लगता है। लोग तान देकर उमंग से गाने लगते हैं। यह होली का गीत प्रस्तुत है :—

हो, हो होरी खेलें नंद को नव रंगी लाला।
अबीर भरि — भरि झोरिन, हाथ पिचकारी रंगन
बोरी।।
तैसीये रंगीली ब्रज की बाला।।
मूरति धरै अनंग, गावत अति तान तरंग,
लाल, मृदंग बजावै मिलि बीना बैनु रसाला।
नंददास प्रभु प्यारी खेलत,
रंग रह्यो छबि बाढ़ी, (७)
छुटी है अलक, टुटी है माला।।

राधा भी किसी से कम नहीं। जिस प्रकार महासुभट संकेत सुनकर युद्ध करने तैयार हो जाता है उसी प्रकार राधा सखियों के कहने पर हाथ में पिचकारी लेकर होली खेलने जाती है और प्रिय की ओर कुटिल कटाक्ष छोड़ती हुई रंग छिड़कती है —

उठी बिहंसि वृखभानु — कुवरि बर,
कर पिचकारी लेत।
सहि न सकत ज्यौं महा

सुभट कोड सुनत समर संकेत।।(८)
होली के रंग में सब रंग जाते है –
'संग लै रंग – भीने ग्वाल,
सब गुन रूप – रसाल,
रंगल –रंग हो – हो होरी।।'(९)

नंददास ने अनेक पदों में 'हो – हो होरी' की ध्वनि करते हुए जनसमूह को ब्रज की गलियों के प्रविष्ट कराकर सामूहिक उल्लास और उमंग का दृश्य प्रस्तुत कर दिया है। होली के अवसर पर नंददास ने ताल मृदंग, मुरज, डफ, ढ़ोल, टनक आदि वाद्य बजाए जाने की बात कह भारतीय संस्कृति की ओर संकेत किया है –

बाजत ताल, मृदंग, मुरज, डफ कही न परत कुछ बात।
रंग सौं मनि ग्वाल – बाल सब, मानो मदन बरात।।

निष्कर्ष रूप में नंददास की रचनाओं की संगीतात्कमता उनकी गायन शैलियों पर स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है। अष्टछाप के संतों की रचनाएँ मूलत: ध्रुवपद और धमार की शैलियों में ही गाया जाता था। आठों याम के कीर्त्तन को मुख्य रूप से इन्हीं शैलियों में गाया जाता था। मध्यकाल को संगीत का स्वर्ण काल कहा जाता है। इसमें मुख्य भूमिका मुगलकाल के बादशाहों के साथ – साथ अष्टछाप के संतों का है जिसमें नंददास प्रमुख है।

संदर्भ ग्रंथ सूचि

१ – 'संगीत दर्पण' पृ. २५
२ – ''संगीत रत्नाकर'' ग्रंथ में पृ. ४०
३ – संगीत बोध'': डा. शरचन्द्र श्रीधर परांजपे
४ – मानसिंह और मानकुतूहल हिन्दी अनुवाद हरिहर निवास द्विवेदी, पृ. ११ – १२
५ – शाहजहाँनामा (मुंशी देवी प्रसाद कायस्थ मुंसिफ जोधपुर ने बादशाह नामें वगैर का फारसी तवारीख की किताबों का सार लेकर हिन्दी में बनाया, संवत् – १९५३)
६ – स्व. आचार्य बृहस्पति: संगीत चिन्तामणी
७ – नंददास की रचना: पदावली – १७५
८ – नंददास की रचना: पदावली – १७६
९ – नंददास की रचना: पदावली – १७७

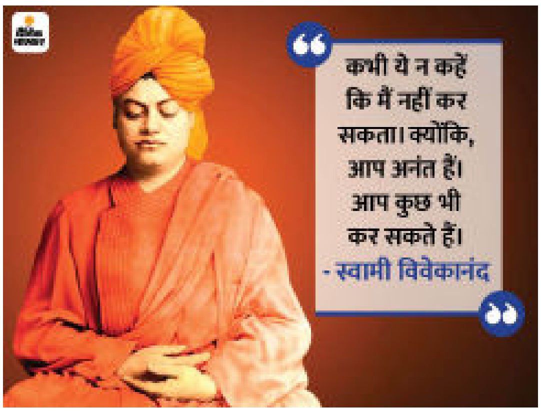

गर्भ के विकास में संगीत का योगदान

प्रा. वर्षा आगरकर
असिस्टंट प्रोफेसर,
दयानंद आर्य कन्या महाविद्यालय,
जरीपटका, नागपुर.
12varshaagarkar@gmail.com

माता को बच्चे का पहला गुरू कहते हैं। क्योंकि बच्चे बहुत कुछ माँ के गर्भ से ही सीखकर पैदा होते हैं। भगवान श्रीकृष्ण ने अपनी बहन सुभद्रा की कोख में पल रहे अभिमन्यू को युध्दनीति सिखाते हुये चक्र व्यूह में प्रवेश करना व उसका भेद करना सिखाया किंतु सुभद्रा के निद्रिस्त हो जाने के कारण वे अभिमन्यू को चक्रव्यूह से बाहर निकलना नहीं सिखा पाये, और आगे चलकर इसी चक्रव्यूह में फसकर अभिमन्यू का दुखद अंत हुआ। यह कहानी हम सभी को पता है। जो जननी है, माता है, अपनी कोख में पल रही शिशु की जीवनदायनी, पालनपोषण करनेवाली रक्षणकर्ता गुरू, सखी सब कुछ है। जो एक नये जीवन को केवल जन्म ही नही देती अपितु इस दुनिया में जीने लायक बनाती है।

हमारी प्राचीन भारतीय संस्कृति में हजारों वर्ष पूर्व ऋषियों ने ग्रंथों में गर्भवती स्त्री के आहार, बिहार, आचार, विचार इन सब बातों का विस्तृत विवेचन किया है। गर्भवती को पूजापाठ, जाप, मंत्रपठन, श्लोक, ऋचा, आरती आदि सुर में गाने की भी सलाह उन्होने दी है। अभी भी हमारी संस्कृति में जिन घरों में गर्भवती स्त्री होती है, उन घरों में नियमित रूप से गीतापाठ, मंत्रजाप आदि किये जाते हैं। उसका आहार, स्वास्थ, रहन–सहन, उसकी सोच आदि बातों पर विशेष ध्यान दिया जाता था। गर्भवती स्त्री को शांत, खुश रहने की तथा अच्छा साहित्य पढने की सलाह भी दी जाती थी।

वर्तमान समय में जीवन गतिमान हो गया है। महिलायें घर संभालने के साथ–साथ बाहर भी काम करने लगी हैं। समय की कमी तथा काम का बोझ होने से उनमें स्ट्रेस, तनाव, चिंता, चिड़चिडापन बढ़ रहा है। आज की गतिमान और स्पर्धात्मक दुनिया में टिके रहने के लिये स्वस्थ, बुध्दिमान, संस्कारी और सकारात्मक बच्चा हर दम्पत्ति की कामना होती है। लेकिन इसके लिये गर्भकाल से ही उस दिशा में सोच समझकर कदम उठाना पडता है। बच्चे से केवल माँ ही सीधा संपर्क बना सकती है। अनेक वैज्ञानिक विकल्प अपनाकर अलग–अलग विधियाँ, उपाय करके माँ बच्चे से सीधा संपर्क बनाकर गर्भ में ही बच्चे को अनेक बातें सिखा सकती है। उसे आश्वस्त, सुरक्षित, सकारात्मक बना सकती है। गर्भसंस्कार के लिये एक महत्वपूर्ण माध्यम ध्वनि या आवाज को माना गया है। जिसके द्वारा बच्चे से सीधा संपर्क होता है। उसमें भी सुरीली आवाज को बच्चे की प्रथम भाषा मानी गयी है। योग, व्यायाम, ध्यान, आचार विचार, खानपान आदि के साथ–साथ गर्भ के विकास में संगीत की भी बहुत अहम् भूमिका है। जिसकी सहायता से माँ अपने लिये शांति, संतुष्टि तथा एक स्वस्थ शिशु पा सकती है।

हजारों साल पहले से हमारी भारतीय संस्कृति में गर्भवती स्त्री को पूजापाठ, आरती, मंत्रपठन, जाप आदि करने की सलाह दी जाती थी। गायत्री मंत्र देवी का जाप, दत्तकवच,श्लोक, ऋचा आदि संगीत के स्वरों पर गाये जाते थे जिनकी दीर्घ गूंज पैदा करनेवाली सांगितिक ध्वनी गर्भ के मस्तिष्क में भाषा केंद्र को उद्दिपित करती है जिससे बच्चे को आगे चलकर भाषा का ज्ञान,

वाणी में शुध्दता तथा विचारों में प्रगल्भता प्राप्त होती है।

सुबह शाम गर्भवती स्त्री यदि घंटानाद के साथ आरती का गायन तथा जाप करती है, तो उसका चित्त शांत, स्थिर और प्रसन्न रहता है। माता के मन की शांति और प्रसन्नता उसके खून द्वारा सीधे बच्चे तक पहुँचती है। घंटानाद की मधुर ध्वनि, तालियों का ठेका और संगीत के स्वरों में गायी जानेवाली आरती बच्चे को भी खुश और प्रसन्न रखती है। साथ ही ये चित्र उसकी याददाश्त में फिट हो जाता है। बाद में जन्मोपरांत अपने शैशव काल में भी वे बच्चे माँ के साथ–साथ आरती, जाप आदि करते हैं। ऐसी संतान आगे चलकर निष्ठावान् तथा बड़ों का आदर करनेवाली और शांत प्रवृत्ति की होती है। संगीत गर्भस्थ शिशुओं को भी आनंद देता है और उनके विकास में सहायता करता है। माँ के दिल की सामान्य तथा लयबद्ध धडकनों की आवाज गर्भस्थ शिशु किसी संगीत की ध्वनि लहरी के समान होता है, जिससे उसका वजन तेजी से बढ़ता है। गर्भस्थ शिशुओं को किस तरह का संगीत पसंद आता है, इस पर भी अनेक प्रयोग हुये। चार महिने का गर्भ सुरीली मधुर ध्वनिवाला संगीत पसंद करता है। वैज्ञानिकों का मानना है कि हमारे कानों में आवाज ग्रहण करने के लिये जो corti cells होते हैं, वो भ्रूण की त्वचा पर हर जगह मौजूद होते हैं, जिससे कान न होते हुये भी भ्रृण का संपूर्ण शरीर ही आवाज को ग्रहण कर सकता है। भ्रूण का हड्डियों में भी आवाज ग्रहण करने की क्षमता होती है, जिससे भ्रूण पहिले महिने से ही बाहरी आवाज सुन सकता है, तथा उस पर अपनी प्रतिक्रिया भी करता है।

सुबह शाम गर्भवती यदि घंटानाद के साथ आरती गायन, जाप करती है तो उसका चित्त शांत, स्थिर और प्रसन्न रहता है। माता के मन की शांति और प्रसन्नता उसके खून द्वारा सीधे बच्चे तक पहुँचती है। संगीत सृष्टि और मानवजाति के लिये सहायक सिध्द हुआ है। जब हम संगीत सुनते हैं तो हमारा पूर्ण शरीर शांत होता है, मन प्रसन्न होता है। यही संगीत गर्भस्थ शिशुओं को भी अत्यंत आनंद देता है, उसके विकास में सहायता करता है।

गर्भकाल में अगर माँ रोज रात को अपने पेट पर हाथों से थपथपाकर लोरी गाये, तो उसके पेट में पल रहे बच्चे की भी प्रतिकारक शक्ति निश्चित रूप से बढती है। गर्भ मे भी बच्चा माँ की आवाज सुनता है, पहचानता है। माँ लोरी गातेवक्त सिर्फ अपने बच्चे के बीच एक सहारा भावनात्मक रिश्ता कायम होता है।

गर्भधारण स्थिति में गर्भवती महिलाओं को शांत, विरसपूर्ण, उत्साहपूर्ण संगीत श्रवण करना आवश्यक है। वाद्यसंगीत भी गर्भवती महीलाओं के लिये लाभदायक बताया है।

सारांश यह है कि गर्भसंस्कार प्राचीन काल से परंपरागत विधि है। संगीत गर्भसंस्कार गर्भवतीद्वारा अपने आप से किया हुआ संस्कार है। यह संस्कार मन और बुध्दि को प्रभावित करता है। यह कोई औषध उपचार न होकर संगीत के प्रभाव से मन और बुध्दि को संस्कारित करना है, ताकि पेट का भ्रूण संगीत श्रवण से प्रभावित होकर सुंदर, सुशील, बुद्धिमान और सुसंस्कारित हो। क्योंकि गर्भवती काल में माँ के पेट का भ्रूण ज्ञान प्राप्त करने की क्षमता रखता है, यह विज्ञान द्वारा स्पष्ट हुआ है।

संदर्भसूचि –

आयुर्वेदीय गर्भ संस्कार डॉ. बालाजी तांबे
संगीत विशारद लक्ष्मीनारायण गर्ग
संगीत चिकित्सा लक्ष्मीनारायण गर्ग

पारम्परिक बंदिशों का परिष्करण : कुछ विचार

प्रा. गिरीश चंद्रिकापुरे
असिस्टंट प्रोफेसर
आर.एस. मुंडले धरमपेठ
महाविद्यालय, नागपुर.
gireeshchandrikapure@gmail.com

प्राक्कथन

इस शोधपत्र में पारम्परिक बंदिशें, आधुनिक काल में उनके उपयोजन (अध्यापनतथा प्रस्तुतिकरण) के सम्बन्ध में आनेवाली व्यावहारिक कठिनाइयाँ, उनके परिष्करण की आवश्यकता तथा परिष्करण में क्या सावधानियाँ बरती जाय, इनका यथामती विवेचन करने का प्रयास किया गया है।

परिचायक शब्द (Keywords) बंदिश, शब्दकाव्य, परिष्करण, भावार्थ, प्रतिशब्द, विकल्प

विषय प्रवेश – हिंदुस्थानी शास्त्रीय संगीत के क्षेत्र में घरानेदार बंदिशों का महत्त्व अनन्य साधारण है, तथा इस विषय में कोई दोराय नहीं हो सकती। अच्छी बंदिशें राग के स्वरूप की वाहक होती हैं। राग का स्वरूप कोई watertight compartment नहीं होता, वह एक हद तक लचीला होता है। उसमें अच्छी गुंजाइश होती है, उसके कई पहलू हो सकते हैं। अलग–अलग बंदिशों में राग के स्वरूप के अलग अंग दिखाई दे सकते हैं। उदाहरण स्वरूप राग छायानट की सर्वप्रसिद्ध बंदिश 'पलपल सोच विचार करूँ मैं' अथवा 'बार बार कहिहारी' मेंराग का मुख्य अंग दिखाई देता है। वहीं 'भरी गगरी मोरी ढुर काई छैल' (पृष्ठ ११९ – १२०, हिंदुस्थानी संगीत पद्धति क्रमिक पुस्तकमालिका–भाग ४) बंदिश में राग के अलग पहलू का दर्शन होता है। बंदिश के मुखड़े मे तोराग का मुखदर्शन हो जाता है, किन्तु दूसरी पंक्ति में 'सा ग मग प, नि नि' ऐसा बिहाग–सदृश उठाव दिखाई देता है। अंतरे के आरम्भ में 'प, पध नि ध, नि नि सां' इस बिलावल जैसी संगति का दर्शन होता है। इन संगतियों से ऐसा नहीं समझना चाहिए कि राग के स्वरूप में भ्रष्टता है, बल्कि यह अहसास होना चाहिए कि यह राग के स्वरूप का ऐसा पहलू है जिससे हम अभी तक अनजान थे। इस प्रकार की बंदिशें हमें रागस्वरूप के विस्तार के नए आयाम प्रदान करती हैं। ऐसा हम उन्ही बंदिशों के बारे में कह सकत हैं जो परम्परा से प्राप्त तथा प्रामाणि कहों।

ऐसी परम्परा से प्राप्त बंदिशों को जब अध्यापन अथवा प्रस्तुतिकरण हेतु चयन करना होता है, कभी–कभी गायक को कुछ कठिनाइयों का सामना करना पड़ सकता है। बंदिश के सहज आकलन ना होनेवाले शब्द तथा बंदिश का सहज ध्यान में ना आनेवाला काव्यार्थ, यह मुख्य कठिनाई आती है। जैसे, भीमपलास की सर्वज्ञात बंदिश 'जाजारे अपने मंदिरवा' (पृष्ठ ५७० – ५७१, हिंदुस्थानि संगीत पद्धति क्रमिक पुस्तकमालिका–भाग ३) के अंतरे की अंतीम पंक्ति 'क्या तुम हमको छगन दिया' इसका क्या अर्थ हो सकता है ? पुस्तक में यही शब्द दिया गया है। यह बंदिश अनेक मान्यवर गायकों द्वारा गाई गई है। संगीत मार्तंड स्व. पं. जसराजजी के गायन में 'तुम हम देखा छल न किया' ऐसे शब्दपाए गए। विदुषी अश्विनी भिड़े–देशपांडेजी के गायन में 'क्या तुम हम कोठग न दिया' इस प्रकार का बदलाव पाया गया। उसी प्रकार रागहिंडोल की बंदिश 'चनक बूँद

परिलोरे बलमा' (पृष्ठ १८२, हिंदुस्थानी संगीत पद्धति क्रमिक पुस्तकमालिका—भाग ४) का गायन मान्यवर गायक 'तनक (तनिक) बूँद परिलो' इस प्रकार करते आये सुने जाते है, जो सार्थक प्रतीत होता है। इस प्रकार का परिष्किरण आवश्यक होता है, जिससे श्रोता के मन में अर्थ के बारे में कोई शंका ना रहे।

यह मान्य है कि शास्त्रीय संगीत में शब्दों का महत्त्व अत्यल्प होता है, किन्तु इसका अर्थ ऐसा कदापि नही कि अर्थहीन बंदिशें गाई जाय। सर्वसामान्य श्रोता प्रथम शब्दों के रखाव तथा काव्यार्थ की ओर ही आकर्षित होता है। बंदिश में निहित स्वर तथा लय के विभ्रमों का असरतो अवश्यंभावी ही है, परन्तु दुर्बोध शब्दों का असर उसमें रुकावट पैदा कर देता है।

शास्त्रीय संगीत की चीजों में प्रयुक्त भाषा हिंदी होती है। वह भी प्रमाण भाषा नहीं, बल्कि बोलचाल की भाषा, ब्रजबोली होती है यह हम सब जानते हैं ही। ध्यान देनेवाली बात यह है किस भी बंदिशें ब्रजबोली में नही होती। ब्रज के साथ ही साथ अवधी, राजस्थानी, भोजपुरी, मेवाडी, मालवी, पंजाबी, छत्तीसगढ़ी ऐसी कई बोली भाषाओं में बंदिशें होती हैं। इन बोलियों के कुछ शब्द हमें अनाकलनीय प्रतीत होते हैं। हम इन बोलियों से परिचित नहीं होते, इसीलिए ऐसा होता है। उदा. राग अड़ानामें एक बंदिश है, 'आई रे करकरा' (पृष्ठ ७११, हिंदुस्थानी संगीत पद्धति क्रमिक पुस्तकमालिका—भाग ४)। एक साक्षात्कार में पं. कुमार गंधर्व कहते हैं कि हम यह चीज ऐसे ही गाते थे, 'करकरा' का मतलब पता नहीं था। देवास आने के पश्चात यह ज्ञात हुआ, कि अपने प्रिय व्यक्ति को यहाँ 'करकरा' कहा जाता है। हमे शाकिट—किटकरने वाली अपनी पुत्री को भी करकरी कहते हैं! यहाँ आकर इस शब्द का मतलब समझ आया। राग यमन की प्रसिद्ध बंदिश 'लंगर तुरकजिन छुवो' (पृष्ठ २८ — २९, हिंदुस्थानी संगीत पद्धति क्रमिक पुस्तकमालिका—भाग २) का क्या अर्थ है ? यावनी आक्रमण कर्त्ता तैमूर को 'तैमूरलंग' या 'लंगडा तैमूर' कहा जाता था। तोलंगरतुरक का अर्थ हुआ लंगडा यवन। यवनलोग यहाँ की महिलाओं को छेड़ते थे, उसकी स्त्रीमुख से प्रतिक्रिया है, 'लंगर तुरक जिन छुवो'। किन्तु 'तुरक' शब्द का अर्थ समझमें न आने से किसी परिष्किरणकर्ता ने उसे 'लंगर तुकर जिन छुवो' इस प्रकार बदल दिया और अर्थ बताया 'कर' अर्थात हाथ ना छुवो! 'जिन' या 'झिन' शब्द का अर्थ नकारात्मक है, उदा. 'तुम हम सन जिन बोलो' अर्थात् मत बोलो।

कुछ चीजें काफी समय के बाद अपभ्रंशित हो जाती हैं, जिसका एक उदाहरण है— शुद्धकल्याण की प्रसिद्ध बंदिश 'रसभीनीभीनी'। इस बंदिश की विडंबनाही अलगहै। 'भीनी' शब्द का अर्थ समझ न आने की वजह से उसे 'रस बेगीबेगी आवो' कर दिया गया। इस बंदिश की कई आवृत्तियाँ प्राप्त होती हैं। किसी प्रकार में 'रस भिन्न भिन्न आवे' कहा गया, तो कहीं 'रस भीनी भीनी आँखे'।

अंततः, श्री संदीप बागची द्वारा लिखित 'NÂD' इस पुस्तक में इस बंदिश का सार्थक शब्द काव्य पाया गया, जो निम्नप्रकार से है :

स्थायी : रस भीनीभीनी आँख, तेरोना आवन के सोंजागी।

अंतरा : भार झुके और हार टूटो, ऐसो जोबन लूटो, कहत सदारंग।।

काव्य का भावार्थ : पुस्तक में इसे अंग्रेजी में दिया गया है।

'These tear-filled eyes, they are awake because you have not come. They are downcast with the weight of tears, which fell like the pearls from a broken neckless. Thus their youth is wasted, says 'sadarang'.

भावार्थ : 'रस' का एक अर्थपानी भी होता है। पानी से डबडबाई हुई आँखें, 'तेरोना आवन के सोंजागी' अर्थात प्रेमी के न आने के कारण जागर ही हैं। अंतरे में जो वर्णन है, वह अति विलोभनीय है। आँखे जब जल का भार सह नहीं सकती, तो आँखों से आंसू टपकने लगते हैं, जिन कोहार के टूटने से नीचे गिरते मोतियों की उपमादी गई है। आंसुओं के बहने से आँखों का सौंदर्य नष्ट होने लगा है, ऐसा 'सदारंग' कहते हैं।

जय जयवंती राग की उ. फैयाज़ खां साहब की बंदिश 'मोरे मंदर अबलो नहीं आये' बंदिश के विषय में भी परिष्किरण कर्त्ता को 'अबलो' का अर्थ समझमें न आने की वजह से उसे 'मोरे मंदर अब क्यों नहीं आये' या 'मोरे मंदर अजहूँ नहीं आये' कर दिया गया। वस्तुत: वह शब्द 'अबलो' न होकर 'अब लौंग' है, जो संक्षिप्त होकर अबलो रह गया। 'अब लौंग' का अर्थ 'अब तक' ऐसा होता है, जिससे इस पंक्ति का अर्थ '(मेरे प्रियतम) मेरे घर अब तक नही आये' ऐसा होता है।

ऐसे और कई उदाहरण गिनाए जा सकते हैं, लेकिन विस्तारभय के कारण उनका उल्लेख उचित नहीं। इन उदाहरणों से ज्ञात होता है कि मूल शब्द का अर्थ समझ न आने की वजह से उसे अनुचित रूप से बदल दिया गया, जिससे कभी कभी तो बंदिश का अर्थ ही परिवर्तित हो गया। इस प्रकार का परिष्करण निश्चय ही वांछित नही है। अगर अर्थ समझ न आए तो उसे ढूँढने का प्रयास करना चाहिए। फिर भी बात न बनेतो बंदिश के अर्थ के अनुकूल प्रति शब्द की योजना करनी चाहिए। 'ख्याल गायन में शब्दों का स्थान गौण है' इसी उक्ति को पकड़ कर असंबद्ध शब्दों का उपयोग उचित नहीं।

पुराने तरानों में फ़ारसी भाषा के शेर पाए जाते हैं, जो उस भाषा के ज्ञान के अभाव में समझे नहीं जा सकते। इस परिस्थिति में दोही विकल्प रह जाते हैं— या तो उन्हें अर्थबिना समझे ही गालिया जाए, या फिर उन्हें छोड़ दिया जाए। प्रस्तुत लेखक की समझ में और दोविकल्प आते हैं— १. पर्शियन भाषा के किसी विद्वान से उनका अर्थ समझ लिया जावे २. उस शेर के स्थान पर नया अंतरार चलिया जावे। क्रमिक पुस्तक मालिका में हर एक राग में एकाधिकतराने गए हैं, अत: ऐसे फारसी शेर युक्त तरानें छोड़ भी दिए जाए तो कोई हर्ज नहीं। किन्तु विश्वविद्यालय के B. A. Fourth Semester के पाठयक्रम में चतुरंग पढाना पड़ता है, जो जौनपुरी राग में है। उस चतुरंग में एक फारसी शेर है, 'हार्ष वेगुयो किफर्दा तर्क नूंसता किनो, बाज चूफर दोसुफर यूरोजरा दुनिया कुनो' (पृष्ठ ६६९ — ६७०, हिंदुस्थानी संगीत पद्धति क्रमिक पुस्तकमालिका—भाग ३)

प्रस्तुत लेखक ने पर्शियन विभाग के प्राध्यापक शेर का अर्थ बताने की गुज़ारिश की, तो पता चला कि यह शब्द ठीक नहीं हैं। फिर पं. ओंकारनाथ ठाकुर लिखित 'संगीतांजली' के भाग ३ में यही शेर कुछ इस तरह दिया गया है:

रोज में गोयंके फर्दा, तर्के मन सौदाकुनम्।
बादे चूंफर्दा शबद, फीरोजरा दुनियाकुनम्।।

पर्शियन के प्राध्यापक के मत में यह थोडाठी कथा। उसका अर्थ उन्होने कुछ यूं बताया:

'रोज मैं कहता हूँ किकल मैं उल्टे—सीधे व्यापार छोड़ दूँगा, लेकिन बाद में t cog 'कल', 'आज' बन जाता है, मैं फिर से दुनिया की चकाचौंध में खोजाता हूँकृ!'

इस शेर के सुधारित शब्द :

रोज मी गुयम् किफर्दातर्क— ए —मन् सौदाकुनम्।
बादे चुन्फर्दासुफर फ़ी रोजरा दुनियाकुनम् ।।

आज कल तो 'गूगल ट्रान्सलेट' जैसे आंतर जालीय संसाधन उपलब्ध हैं, जिसमें किसी भी भाषा से हम हिंदी में भाषांतर कर सकते हैं।

अंतत: सारांश रूप में प्रस्तुत लेखक अपना

विनम्र मत साझा करना चाहता है कि शास्त्रीय संगीत की पारंपरिक बंदिशों के अर्थको समझने का प्रयास करना चाहिए। कठिन शब्दों का अर्थ ढूँढने के लिए आज हमारे पास पर्याप्त संसाधन उपलब्ध हैं। उनका उपयोगकर, बंदिशों को योग्य रूप से परिष्कृत किया जा सकता है।

संदर्भ :

१.भातखंडे वी. एन., हिन्दुस्थानी संगीत पद्धति क्रमिक पुस्तकमालिका, भाग २

२.भातखंडे वी. एन., हिन्दुस्थानी संगीत पद्धति क्रमिक पुस्तकमालिका, भाग ३

३.भातखंडे वी. एन., हिन्दुस्थानी संगीत पद्धति क्रमिक पुस्तकमालिका, भाग ४

4. Bagchi Sandeep, 'NÂD – Understanding Râga Music' published by eESHWAR, Girgaon, Mumbai – 400004 (1998)

५. ठाकुर ओंकारनाथ, 'संगीतांजलि' भाग ३, प्रणव स्मशतिन्यास वाराणसी (२००५)

6. Audio file: 01.05 Granthali Series Lok Sangeet &Ritu Sangeet 01 (17-05-1985)

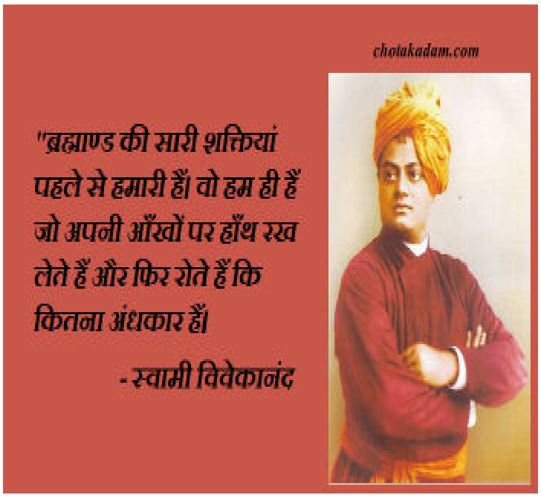

" गढ़वाल का लोक वाद्य यंत्र - ढोल-दमाऊं "

प्रा. अनिता शर्मा
संगीत विभाग प्रमुख,
दयानंद आर्य कन्या महाविद्यालय,
जरीपटका, नागपुर.
anitarsharma12@gmail.com

ढोल–दमाऊं गढ़वाल का प्राचीन, प्रमुख, लोकप्रिय और सर्वश्रेष्ठ वाद्य यंत्र है। ढोल–दमाऊं एक दूसरे के पूरक वाद्य है। ढोल और दमाऊं उत्तराखण्ड की ग्रामीण संस्कृति की आत्मा है। गढ़वाल के प्रमुख वाद्य यंत्रों में ढोल–दमाऊं यहां के लोक संगीत के महत्वपूर्ण आधार है व गढ़वाल का प्रिय वाद्य है। तथा इनको मंगल वाद्य के नाम से भी जाना जाता है।

ढोल–दमाऊं गढ़वाल के अलावा कुमाऊ, जौनसार तथा हिमालय प्रदेश का सर्वश्रेष्ठ वाद्य है। ढोल–दमाऊं साथ–साथ बजाए जाते है अर्थात् ढोल अकेला नही बजाया जाता बल्कि उसके साथ दमाऊ बजाया जाता है। ढोल के शुरू किए संगीत को दमाऊं एक प्रकार से पूरा करता है।

पहाड़ के शुभ कार्य गढ़वाल के वाद्य यंत्र ढोल–दमाऊं की गूंज के बिना अधूरे होते थे। ढोल के प्रत्येक बोल दमाऊं के बोलो के बिना अस्पष्ट होते है। ढोल के लिए प्रत्येक ताल में दमाऊ़ का सहयोग सर्वथा अनिवार्य है। ढोल–दमाऊं वाद्य सम्पूर्ण गढ़वाल का चहेता वाद्य यंत्र है जिसके द्वारा धार्मिक नृत्यों से लेकर आपस के साधारण ढंग के नृत्य तक सम्पन्न किए जाते है। देवताओं के आहवान के समय वाद्यकार जिस लय और ताल से ढोल–दमाऊं का वादन करते है। गढ़वाल में पांडव नृत्य का विशेष चलन है 'मंडाण' ढोल–दमाऊं के साथ किया जाने वाला नृत्य है। ढोल–दमाऊं इनकी ध्वनि तो क्या नाम सुनने मात्र से ही मन–मस्तिष्क में एक दिव्य नाद तथा आनंददायक और मनमोहक संगीत की अभिसृष्टि होने लगती है।

ढोल–दमाऊं का महत्व – ढोल और दमाऊं उत्तरांचल के पहाडी समाज की आत्मा रहे है। जन्म से लेकर मृत्यु तक, घर से लेकर जंगल तक कोई भी संस्कार या सामाजिक गतिविधि इनके बिना अधूरी है। ढोल–दमाऊं को प्रमुख वाद्य यंत्रो में इसीलिए शामिल किया गया क्योंकि इनके माध्यम से ही देवी–देवताओं का आवाहन किया जाता है और लोककथाओं के अनुसार ऐसा माना जाता है कि इनकी उत्पत्ति शिवजी के डमरू से हुई है जिसे सबसे पहले भगवान शिव ने माता पार्वती को सुनाया था और वहाँ मौजूद एक समूह द्वारा इन्हे सुनकर याद कर लिया गया और तब से लेकर आज तक यह परंपरा पीढ़ी दर पीढ़ी मौखिक रूप से चली आ रही है।

शादी व मंगनी के कार्यक्रम मे लोग ढोल–दमाऊं बजाकर अपनी खुशी प्रकट करते है। ढोल–दमाऊं के माध्यम से कई प्रकार की विशेष तालों को बजाया जाता है, विभिन्न तालों के समूह को ढोल सागर भी कहा जाता है। ढोल सागर में लगभग १२०० श्लोको का वर्णन किया गया है, अलग समय पर अलग–अलग ताल बजाई जाती है जिससे इस बात का पता चलता है कि कौनसा अवसर व संस्कार है।

जिस प्रकार आजकल की दुनिया आधुनिक होती जा रही है। वे पार्टी व शादी आदि में डीजे अथवा बैंण्ड का प्रयोग करते है, किन्तु

उत्तराखण्ड की संस्कृति में आज भी गढ़वाली लोग ढोल–दमाऊं का ही प्रयोग कर, इसके ताल का आनन्द लेकर नृत्य करते है और जिस क्षेत्र को देवी–देवताओं के निवास की जगह माना गया हैं वहाँ प्रचलित कथाओं में दमाऊं को भगवान शिव का और ढोल को ऊर्जा का स्वरूप माना जाता है। अत: ढोल और दमाऊं का रिश्ता पति–पत्नि के रिश्ते की तरह अर्थात शिव–शक्ति जैसा माना गया है।

ढोल–दमाऊं का स्वरूप व बनावट – ढोल साल की लकड़ी तथा ताम्बे से बना होता है इसके दाहिने ओर बारहसिंगा या भैंस तथा बाई ओर बकरी की खाल होती है तथा इसकी लम्बाई डेढ फीट और चौड़ाई तथा फीट होती है। दमाऊं तांबे का बना हुआ एक फुट व्यास तथा ८ इंच गहरे कटोरे के समान होता है। दमाऊं की खाल मोटे चमड़े की होती है।

ढोल–दमाऊं का संरक्षण – गढ़वाल की संस्कृति में विभिन्न मौकों पर सुर तथा ताल में ढोल–दमाऊं का वादन किया जाता है। ढोल–दमाऊं के हुनरबाज इस कला के क्षेत्र मे रोजगार के अवसर नही होने की वजह से काफी परेशान है। और इसीलिए इन हुनरबाजों की अगली पीढ़ी ढोल–दमाऊं की कला को अपनाने को तैयार नही है।

आज उत्तराखण्ड की पर्वतीय संस्कृति पर पाश्चात्य देशों की संस्कृति का खासा असर पड़ा है इसलिए आधुनिकता के दौर मे पहाड़ के ही अधिकतर लोग ढोल–दमाऊं को भूलते जा रहे है और नई पीढी इसे बजाना नही चाहती है। सदियों पुरानी यह कला लुप्त होने की कगार पर है जिनका संरक्षण ही मुख्य उपाय है इस हेतु राज्य सरकार तथा क्षेत्रीय स्तर पर इनके लिए जागरूकता संबंधित कार्यक्रम प्रसारित करने चाहिए क्योंकि उत्तराखण्ड एक पहाड़ी राज्य होने के कारण नाना प्रकार की संगीत, कला, संस्कृति तथा परंपराओं से समृध्द राज्य है महत्वपूर्ण बात यह है कि इन पुरातन कलाओं तथा परंपराओं का संरक्षण किया जाए और इन्हे विलुप्त होने से बचाया जाए किसी सामाजिक और सरकारी अपेक्षा के कारण यह कला भी दम न तोड़े।

आज शादी ब्याह जैसे मांगलिक कार्यो में भी इनका महत्व कम हो गया है लोग आधुनिक वाद्य यंत्रो को ज्यादा बढावा दे रहे है। इससे ढोल–दमाऊं का अस्तित्व गंभीर खतरे मे है। हमे किसी तरह इन वाद्य यंत्रो और इनके बजाने वाले कलाकारों का संरक्षण करना पडेगा अन्यथा हम पहाड़ी संस्कृति का एक महत्वपूर्ण हिस्सा खो देगे। अब उत्तराखण्ड सरकार भी इसे बढ़ावा देने के लिए कदम उठा रही है। ढोल–दमाऊं हरिजन जाति के औजी बजाते है। उन्ही को ढोल सागर का ज्ञान होता है जिसका वे युगों से संरक्षण करते चले आ रहे है।

संदर्भग्रन्थ –

१. गढ़वाल का सांस्कृतिक वैभव –
डॉ. शिवानंद नौटियाल

२. गढ़वाली गाथाओं में लोक और देवता –
डॉ. वीरेंद्र सिंह बर्त्वाल

३. इंटरनेट –https://www.kafaltree.com> dhol.da
https://ukacademe.com>UK Pedia

सुमित्रानंदन पंत एवं उनका काव्य-साहित्य

हेमचन्द चन्दोला
हिंदी एवं संस्कृत
भाषाअध्यापक
उत्तराखंड शिक्षा विभाग
Hemchand666@gmail.com

२०वी सदी का आरंभ हिंदी साहित्य के इतिहास में 'द्विवेदी युग' के नाम से जाना जाता है। 'खड़ी बोली हिंदी' का हिंदी साहित्य में विशेषत: 'काव्यसाहित्य' में लगभग पूर्ण रूप से प्रवेश इसी युग में हुआ। परंतु 'द्विवेदी युग' में भाषा पर बलाधिक्य के कारण काव्य का उत्कर्ष उतना प्रभावशाली नहीं रहा, जितना कि छायावादी काल में देखने को मिलता है। पल्लव की भूमिका में पंत लिखते हैं—''अब ब्रजभाषा और खड़ी बोली के बीच जीवन—संग्राम का युग बीत गया, हिंदी ने अब तुतलाना छोड़ दिया, वह पिय को प्रिय कहने लगी है।'' काव्य में भाषा, शिल्प, चेतना, बिंब, शैली आदि सभी का चरम उत्कर्ष छायावादी युग में देखने को मिलता है। छायावाद के चार प्रमुख स्तंभों में से ही एक हैं 'कवि सुमित्रानंदन पंत'। पंत जी का जन्म सन् १९०० में वर्तमान उत्तराखंड के अल्मोड़ा जिले के कौसानी नामक ग्राम में हुआ था। पंत जी की काव्ययात्रा का प्रथम आधार प्राकृतिक संवेदना है। प्रकृति को पंत अपनी प्रेरणा शक्ति मानते हैं। जन्म के समय उनके शिर पर से माँ का साया उठने पर उन्होने आगे चलकर लिखा—

माँ से बढ़कर रही धात्रि तू बचपन में मेरे हित! धातृ रूपक भर तूने किया जनक बन पोषण मातृहीन बालक के शिर पर वरद हस्त धर गोपन।

वे कहते हैं कि ''कविता लिखने की प्रेरणा मुझे सबसे पहले प्रकृति—निरीक्षण से मिली है जिसका श्रेय मेरी जन्मभूमि कूर्मांचल प्रदेश को है।'' प्रकृति के सौंदर्य ने पंत जी के चित्त को अपनी ओर इस प्रकार आकर्षित किया कि वे मानवीय सौंदर्य की तक उपेक्षा करते दिखाई पड़ते हैं—

छोड़ द्रुमों की मृदु छाया,
तोड़ प्रकृति से भी माया,
बाले! तेरे बाल जाल में
कैसे उलझा दूँ लोचन?

पंत जी ने काव्यशिल्प, काव्यभाषा, काव्यबिंब आदि सभी दृष्टियों से छायावादी काव्यधारा में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।छायावादी कवियों में सबसे अधिक एवं सबसे लम्बे समय तक पंत जी ने कविताएँ लिखी। लगभग ६० वर्षों तक हिंदी काव्य जगत को उन्होंने अपनी रचनाओं से पुष्पित एवं पल्लवित किया। 'उच्छवास' से लेकर 'युगवाणी', 'स्वर्णधूलि' तक की रचनाओं में पंत जी ने बदलते समय के साथ अपनी साहित्यिक विचारधारा को भी नित नए आयाम प्रदान किए। पंत जी एक ऐसे विशिष्ट व्यक्तित्व थे, जो प्रकृतिवादी, मानववादी तथा आध्यात्मवादी पृष्ठभूमि पर निरंतर काव्य सृजन करते रहे। उच्छवास, ग्रंथी, वीणा, पल्लव, गुंजन, युगांत आदि पंत जी की छायावादी युग की रचनाएँ हैं। युगवाणी, ग्राम्या उनकी प्रगतिवादी विचारधारा से प्रेरित रचनाएँ हैं। इनमें संकलित कविताओं में कवि कल्पना के आलोक से यथार्थ के धरातल पर आते दिखाई पड़ते हैं। युगांत उनके प्रथम काव्यकाल की समाप्ति का सूचक है। प्रगतिवादी युग में पंत जी की दृष्टि अत्यधिक मानवतावादी होती देती है और वे मार्क्सवाद, गाँधीवाद, अरविन्द दर्शन इन सबको परखते नज़र आते हैं। पंतजी

का मानना था –''लेखक की कृतियों में विचार–साम्य के बदले उसके मानसिक विकास की दिशा को अधिक महत्व देना चाहिए, क्योंकि लेखक एक सजीव अस्तित्व या चेतना है और वह भिन्न–भिन्न समय पर अपने युग के स्पर्शों तथा संवेदनाओं से आंदोलित होता रहता है।'' छायावादी कवियों में पंत जी को 'प्रकृति का चितेरा कवि' भी कहा जाता है।प्रकृति को उन्होने माँ, प्राण, सहचरी तथा गुरु माना। प्रकृति वस्तुतः पंत जी के लिए एक कोमल कल्पना है। उनके द्वारा किया गया प्रकृति का मानवीकरण अप्रतिम है।उनके प्रकृति केंद्रित साहित्य में प्रकृति का अत्यंत सूक्ष्म निरीक्षण नवीन बिंब शैलियों में दिखाई देता है। बिंबों की गहन और व्यापक संवेदनशीलता उनकी 'प्रथम रश्मि' कविता में दर्शनीय है, जिसमें सूर्य को जागरण का प्रतीक बनाकर उन्होंने प्रस्तुत किया है। इस कविता में पंत जी का एक ओर भाषा पर ध्यान है तो वहीं प्रकृति निरीक्षण का भी उन्होंने अद्वितीय परिचय प्रस्तुत किया है–

प्रथम रश्मि का आना रंगिणि!
तूने कैसे पहचाना?
कहाँ, कहाँ हे बाल–विहंगिनि!
पाया तूने यह गाना?
निराकार तुम मानो सहसा
ज्योतिपुंज में हो साकार।
बदल गया द्रुत जगज्वाल में धरकर
नाम–रूप नाना।
खुले पलक, फैली सुवर्ण छवि, खिली सुरभि
डोले मधु–बाल।
स्पंदन, कंपन, नव जीवन फिर
सीखा जग ने अपनाना।

प्रकृति प्रेम से आगे बढ़ने पर पंत जी की रचनाओं में प्रगतिवादी मानवीय चेतना एवं नव–मानवतावाद की संकल्पना का भी प्रभाव देखने को मिलता है।'युगवाणी' पंत जी की प्रथम प्रगतिवादी रचना मानी जाती है। जहाँ आरंभिक रचनाकाल में प्रकृति के प्रति आस्था पंत जी की रचनाओं की विषेशता रही, वहीं 'युगवाणी' में उनका यह मोह छूटता नज़र आता है और वे अपनी रचनाओं में शोषितों का चित्रण करते दिखाई पड़ते हैं। ईश्वर के प्रति अनास्था, सामाजिक यथार्थ का चित्रण, नारी की सामाजिक दशा का चित्रण उनकी रचनाओं में होने लगा।उन्होंने रोमानी अंदाज में मानवीय सौंदर्य का चित्रण भी अपनी रचनाओं में किया है। उनका मानना है कि मनुष्य के भीतर सम्पूर्ण प्रकृति का वास है। मनुष्य के सत्य, प्रेम, श्रद्धा, भक्ति अन्यतम हैं। पंत जी एक ऐसा समाज देखना चाहते हैं,जिसमें किसी भी प्रकार का भेदभाव न हो, जहाँ सभी के लिए जीवन सरल एवं सुलभ हो। इसी विचार के कारण मार्क्सवाद के प्रति उनकी आस्था बनी रही।

सुन्दर हैं विहग, सुमन सुन्दर,
मानव! तुम सबसे सुन्दरतम,
निर्मित सबकी तिल–सुशमा से
तुम निखिल सृष्टि में चिर निरुपम!

पंत जी की काव्य यात्रा कातृतीय पड़ाव अरविंद दर्शन है।अरविंद दर्शन से प्रभावित पंत जी ने सहर्ष स्वीकारा है कि भौतिक सभ्यता में रहकर भी देवत्व की प्राप्ति की जा सकती है, शारीरिक, मानसिक, आत्मिक एकीकरण से देव तत्व की प्राप्ति होती है। अरविंद दर्शन के प्रभाव से पंत जी को भौतिकता और आध्यात्मिकता के समन्वय का एक आधार प्राप्त हुआ। अरविंद दर्शन से प्रभावित उनकी प्रमुख रचनाएँ हैं– स्वर्ण किरण, स्वर्ण धूलि। इन दोनो रचनाओं में पंत जी ने बौद्धिकवाद का विरोध करते हुए आत्मवाद की ओर अभिमुख होने की बात कही है–

आत्मवाद पर हँसते हो भौतिकता का रट नाम?
मानवता की मूर्ति गढ़ोगे क्या संवारकर चाम?

पंत जी शब्दों के शिल्पकार हैं उन्होने दर्शन, कला, विज्ञान से विषयों को समझकर कल्पनात्मकता प्रदान की है। पंत जी ने भाषा एवं भाव की एकता जोर दिया है, उनका काव्य कौशल यह है कि उन्होंने अपने काव्य में भावना के सहज प्रवाह के साथ माधुर्यता का समन्वय भी स्थापित किया है। उनके शब्दों के चयन का कौशल भी अद्वितीय है।पंत जी का अपनी साहित्यिक विचारधारा से कभी किसी प्रकार का विशेष मोह नहीं रहा, जैसे–जैसे उनकी दार्शनिक विचारधारा में परिवर्तन होते रहे, उन्होंने अपनी कविताओं में उस दर्शन को स्थान दिया। अंततोगत्वा अरविंद के नव–मानवतावादी दर्शन में पंत अन्तश्चेतनावादी हो गए। प्रकृति के प्रति आज जो असंवेदनशीलता व्याप्त है, पंत जी की कविताएँ उसमें संवेदना जागृत करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं। पंत जी का साहित्य निश्चय ही समाज को नई दिशा प्रदान करता है।

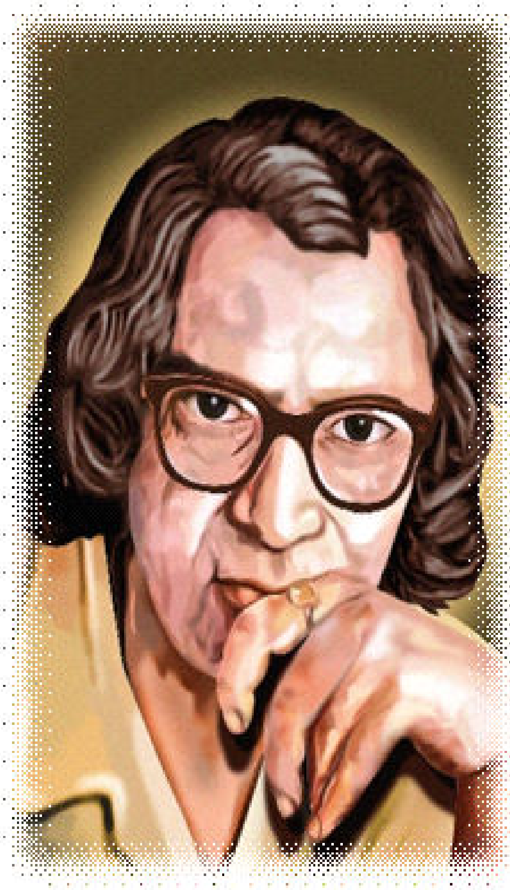

संदर्भ श्रोतः–

१ हिंदी साहित्य का इतिहासः डॉ. नगेन्द्र

२ छायावाद : नामवर सिंह

३ पंत की काव्यभाषाः कांता पंत

४ पंत का नवीन जीवन दर्शनः डॉ. नगेन्द्र

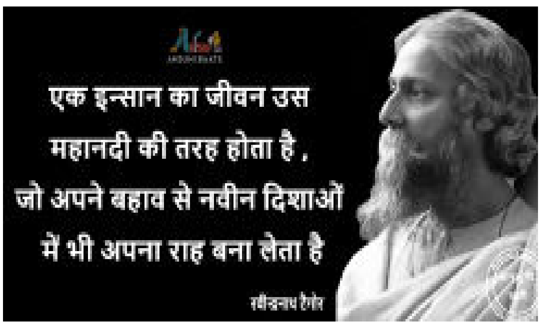

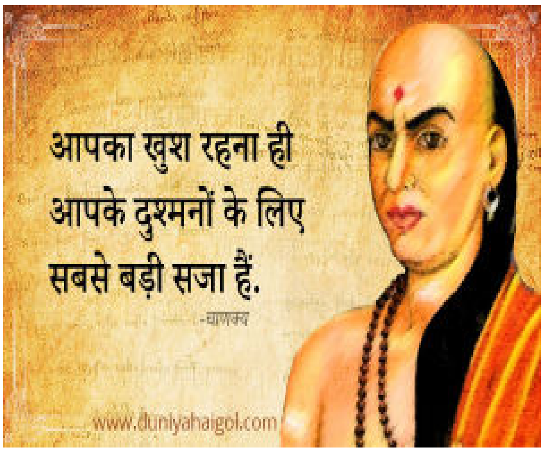

स्व. लता मंगेशकर के गाये दर्दीले गीत एक श्रध्दांजली.....

प्रा. जे.के. मसीह
अंग्रेजी विभाग प्रमुख
(निवृत्त)
नबीरा महाविद्यालय, काटोल.

पी. बी. शेली अंग्रेजी कवि की पंक्तियाँ हैं – "Our sweetest songs are those that tell of saddest thoughts." तलत महमूद साहब रेशमी आवाज के धनी भी गाते हैं – ''हैं सबसे मधुर वो गीत जिन्हें हम दर्द के सुर में गाते हैं''। लता मंगेशकरजी ने सब प्रकार के गीत गाये हैं परंतु उनके गाये दर्दीले गीतों का जवाब नहीं – अप्रतिम। बहुत छोटी उम्र से उन्होंने गाना शुरू किया। १९४९ में बनी ''महल'' फिल्म में उनके गाये गीतों ने, खासकर 'आयेगा आने वाला' उनकी असाधारण अलौकिक प्रतिभा का भान सब संगीतकारों को करा दिया। संगीतकारों ने जी जान से उनके लिये धुनें तैयार की। एक से बढ़कर एक पर लताजी ने अपनी अलौकिक मधुर आवाज से उन धुनों में गाये गीतों की मधुरता को अंतिम चोटी तक पहुँचा दिया। गानों में इस्तेमाल किये गये शब्द उनके गले से प्रस्फुटित होकर कानों को कितने मधुर लगते हैं जिसकी कल्पना तक नहीं कर सकते। उनकी आवाज 'पारस' की तरह थी जो लोहे को अपने स्पर्श से स्वर्ण में परिवर्तित कर देता है। गीतकार अपने शब्दों में मानवीय सुख, दुख, स्नेह, प्रेम, ममता जैसी भावनाओं को व्यक्त कर देता है परंतु लताजी की आवाज उन शब्दों मं व्यक्त भावनाओं को सीधा दिल तक पहुँचा देती है। यहाँ समझने वाली बात यह है कि गीत के शब्द, गीत की धुन, संगीत और आवाज इनमें से कौन गीत को प्रभावशाली बनाता है। ध्यान से सुनने के बाद निश्चित ही महसूस करेंगे कि गाने वाले की आवाज ही जादू का काम करती है। फिल्मी गानों के शब्द अक्सर सीधे सरल मिलेंगे परंतु उन गानों में 'जान' आवाज, धुन और संगीत से आती है विशेष रूप से 'आवाज'। लताजी के दर्द भरे गीतों में हम इस बात को महसूस कर सकते हैं। क्या यह आश्चर्य नहीं कि १९४९ से १९५५–५६ के बीच के गाये गीत आज भी उतने ही दिल जीतने वाले एवं लोकप्रिय हैं। लताजी के बहुत से दर्द भरे गीत अत्यंत मधुर हैं, अप्रतिम हैं परंतु लोकप्रियता के मंच पर नहीं आ पाये हैं। कारण – सोचिये, उनके तीस हजार गाये गीतों में से आप कितने गीत चुन पायेंगे। उनके गाये गीत एक से बढ़कर एक हैं। जो भी गीत हम सुनते हैं वे इतने प्रभावशाली होते हैं कि हम उन्हें ही गाते सुनते रहते हैं बहुत से नज़र अंदाज हो जाते हैं। इसमें लताजी की आवाज ही है जो हमे पकड़े रखती है 'महल' फिल्म का गीत 'आयेगा आने वाला' का 'आलाप' – खामोश है ज़माना चुपचाप हैं सितारे....' लताजी की आवाज, गाने का अंदाज, शब्दों के उच्चार– दिल–दिमाग कान सब उनमें ही रम जाते हैं, खो जाते हैं। उनकी आवाज के जादू को किस तरह शब्दों में समझायेंगे? बस महसूस कर सकते हैं। रसिक बलमा, तुम ना जाने किस जहाँ में खो गये, चाँद फिर निकला, ये जिंदगी उसी की है, हम तो तुम्हारी याद में इतना क्यूं रोये,... जाना था हमसे दूर बहाने बना लिये. .. ऐसे लगता है वख्त ठहर गया है जिंदगी थम सी

गयी है। लताजी के गीतों का तो समंदर है, आप अपनी मुठ्ठी में कितना समेट पायेंगे...... कितने गीत आप सुन पायेंगे, गा पायेंगे? ज़िंदगी खत्म हो जायेगी पर गीत खत्म नहीं होंगे। लताजी के गीतों की संख्या की सीमा क्षितिज की सीमा की तरहा है जहाँ पहुँचने के बाद वह सीमा और आगे सरक जाती है। कितने गीत सुनेंगे कितने गीत गायेंगे और कितने गीत याद रख पायेंगे? लताजी के गीतों की धुन और संगीत के बारे में– उनकी आवाज के हिसाब से हरेक संगीतकार बडी जवाबदारी के साथ लताजी की आवाज को ध्यान में रखते हुए उनकी आवाज के अनुरूप धुनें और संगीत तैयार करते रहे। सी. रामचंद्र, नौशाद साहब, खैय्याम, शंकर–जय–किशन, एस.डी.बर्मन – कोई भी संगीतकार हो उन्होंने लताजी की आवाज का, उनके व्यक्तित्व का 'सम्मान' किया लाजवाब धुनें और संगीत देकर।

फिल्मों में जिन अभिनेत्रियों के लिये लताजी ने दर्द भरे गीत गाये हैं उनका अभिनय–अर्थात उनके चेहरे के हाव–भाव इतने पॉवरफुल लताजी की आवाज के अनुरूप होते हैं कि समझना कठिन होता है कि हम लताजी की आवाज में खो गये हैं या अभिनेत्री के अभिनय में – "a grand artistic feast for the soul!"

लताजी बहुआयामी गायिका थीं। सब प्रकार के गीत उन्होंने गाये। प्रेमगीत, भक्तिगीत, देशभक्ति के गीत लोकसंगीत पर आधारित गीत, शास्त्रीय संगीत पर आधारित गीत – बेहिसाब, बेनज़ीर।

शेक्सपिअर, अंग्रेजी नाटककार एवं कवि ने ३७ नाटक लिखे – सुखांत दुखांत, ऐतिहासिक, रोमांस परंतु उनके लिये चार दुखांत नाटकों ने उन्हें विश्व का महान नाटककार बना दिया। चार सौ वर्ष से अधिक हो गये उनके दुखांत नाटकों की लोकप्रियता कम नहीं हुई। लोग पढ़ने ही जा रहे हैं और उन नाटकों पर आलोचना साहित्य लिखते ही जा रहे हैं। कारण – लताजी के एक दर्दीले गीत की लाइन – ''खुशियाँ हैं चार दिन की आंसू है उम्र भर के'' दर्दो –गम और मोहोब्बत का रिश्ता गहरा होता है। शायद दोनों एक दूसरे के पूरक होते है – ''प्यार क्या जिस प्यार में कुछ ग़म नहीं...'' लताजी के दर्द भरे गीत लोग बरसों बरस–सुनते रहेंगे गाते रहेंगे। बड़े–बड़े गायकों ने भी लताजी की आवाज और उनके गायन का खुलकर लोहा माना है। मेहदी हसन साहब तो अपनी महफिलों में बड़ी कशिश के साथ गाते हैं – ''हम प्यार में जलने वालों को चैन कहाँ आराम कहाँ...।' जगजीत सिंगजी ने अपने concerts में लताजी के बहुत से गाने गाये हैं – खासकर उनके युगल गीत (Duets) – सीने में सुलगते हैं अरमा या याद किया दिल ने कहाँ हो तुम..... तुम न जाने किस जहाँ में खो गये.... लताजी के बारे में जितना भी लिखें कम होगा। बस अंत में – उन्होंने जो गीत दिये, उनके लिये हम उनके प्रति सदैव कृतज्ञता महसूस करते रहेंगे.... ।

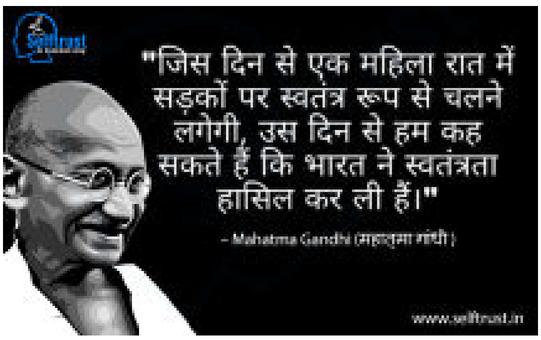

Road To Be Taken

Dr. Sunil Kumar Navin
Principal,
Nabira College, Katol.
sunil.navin@rediffmail.com

Pages of the past
Are crowded with records of those
Who taught and spread hatred
And galled minds with venom
They neither deterred nor hesitated
To Kill
The defenseless lot of humanity
At their will.
The earth in its turn
Soon effaced from its face
Those perpetrators of cruelty.
They are remembered with pain and dread
And utter hatred.

The pages of the past
Aren't devoid of records of those
Who with passion
Schooled lessons of love
And brought grace to the human world.
They marched ahead with piety
And led forward humanity.
They are alive in human hearts
And will remain so
Till our world is a reality.
In silence we crave for
And with indulgent love
Gratefully remember
With fond memories
Their deeds and stories

There are still those
Who wait for
Right time to reach and act
And sit idle
Within the weak fortress of
Confusion and indecision
Are fated for their killers
To be hacked into pieces
And get listed in indices.

Friends ! Roads are many
Wide and straight,
Let your voice be loud and clear
And let your steps move
In the right direction
With no iota of fear.

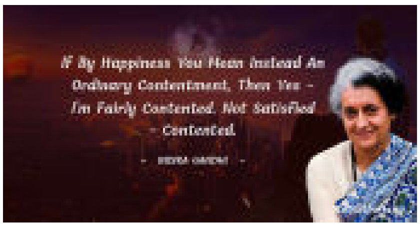

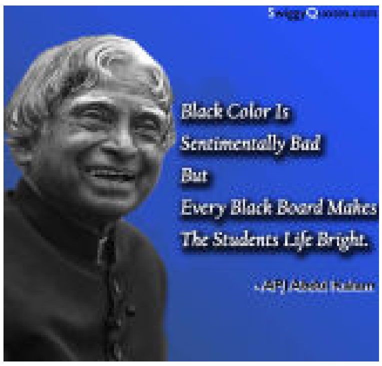

Music as a Therapy in modern era-An overview

Dr. Bhavik C Maniyar
Dept.of Music
Arvindbabu Deshmukh
Mahavidyalaya
Bharsingi, Dist-Nagpur
Mob.No.7744983359

Abstract:

At present, the existence of human beings is most threatened. This age can be called the father of incurable diseases. In this wild race of life man is suffering from many mental-physical ill-effects. In such a situation, music can do the work of therapy in making the whole environment beautiful, peaceful and prosperous. As a result, polite society, pure environment, pollution free, healthy mind and body, sharp intellect, sharpness etc. are easily accessible through music. The specialty of Indian raga-music is that the swara waves contained in it work to color and incorporate the subtleties and characteristics inherent in the person in their own color. It touches the depths of the mind and attains ecstasy. It actually makes the patient healthy, sensitive to senselessness. In the presented research paper, topic has been discussed about the method of music therapy and its importance in present times.

Keywords: Music, human being, therapy, mental & physical.

Preface: Indian culture is admired, admired and exemplified everywhere due to its vibrant traditions, governing values and unchanging uniqueness. This is the conductor of Indian civilization and culture - the horizontal arts. In Indian culture, art has been called 'Manasatvam' and it is inspired by the thought of 'Atmakavat-Sarvabhuteshu'. According to Indian thought, there are sixty-four arts. In which fine arts have some distinctiveness from other arts. The arts have always inspired the mind to develop a sense of beauty in life and to live life to the fullest, totality. Among which the most outstanding, effective and vocal art is music. Music is a continuous stream of expression of human emotions and feelings through swajaras. It is the sweetest manifestation of the creations given by God. Music is that supreme divine sound in which all the Self of the Creator is contained' the entire universe is filled with music. It is a unique and beautiful harmony of sounds that vibrate the human heart system. According to Indian belief, music is the form of God, and that is why the joy derived from it is called 'Brahmananda-sibling'. It is an art created by lord Shiva, which engulfs everyone with the rain of melody, is the climax of experiences, which is a simple and accessible means of attainment of salvation beyond the true chit, happiness and cosmic

discrimination, the background of Indian music filled with the feelings of Satyam Shivam Sundaram, spiritual development, It is based on religious opulence and the tasteful development of life. The place of musical art in the fine arts is supreme, because its instruments are extremely abstract and movable. Where the instruments of poetry are language and expressions, lines and colors of painting, the main instruments of music are only tone and rhythm. It is because of this special distinction that music has maintained an important, unique and respectable place in the fine arts. Music can be seen as a means of worldly, transcendental, material, material bliss. The essence of spirituality is to make man forget himself, to unite mental inspiration with an unknown force called god. This state is called Samadhi by some. This is the state of bliss without happiness and sorrow, but it is very difficult for the common man to attain such a state. However, this difficult yoga practice can be made available to human beings through music. There is a correlation between music and physical health. In ancient Egypt, musical instruments were used to relieve the pain of childbirth. The book 'Ragachikitsa' in Indian musicology sheds light on various rages and their effects on diseases. 'Ragdarbari' helps to reduce stress. This rage was created by Tansen for Emperor Akbar. Emperor Akbar used to listen to this raga to get relief from the stress of the day. Ragabhupali and raga todi helps in lowering high blood pressure. Raga Malkans, Raga Asavari will be useful on blood pressure disorder. For those who have heart disease, Raga Chandrakans, Raga Tilakkamod Durga on stress, Kalavati, Raga Bihag and Raga Bahar are beneficial for restful sleep. Efforts are being made to use music in modern medicine as well. Research is underway on how useful music can be for cancer, heart disease, cesarean or other surgeries. Listening to music during chemotherapy in life threatening diseases like cancer can prevent side effects like nausea and vomiting. The rhythmic sound of music helps to harmonize the right and left brains. Not everyone likes a particular rhythm in music. It is important to note that each person has different tastes. All kinds of music events have to be organized accordingly. Everyone finds you very happy and enthusiastic because of classical music. It has been observed that not only humans but also animals enjoy music. Experiments by naturalist Jagadish Chandra Bose have shown that listening to music makes plants grow faster and faster. Music calms the mind, makes the mind happy. In the past, the concept of healing was developed from the ringing of bells. Music has gained a unique general importance in today's world for relieving stress.

Indian Traditional Music -In Indian music there are probably many different types of talas, different types of rhythms, swara-dialogues, shruti-swar-murchhatana, innumerable ragas-raginis, mel-that, raga

system, tala system, various systems of music, song styles, singing styles, various musical instruments. The method of playing, distinctive accompaniment, freedom of imagination, independent power of tone and rhythm, infinity, rasa, etc. are such qualities which are not found in the music of other countries. Full of such limitless possibilities, in which there is an indomitable ability to create an infinite universe, whose breadth and depth are beyond imagination to estimate. It is from these specialties that Indian music has emerged on the horizon of world music.

Music as a therapy - Psychiatric disorders account for 90% of all human illnesses throughout life. The current lifestyle is extremely complementary to such ailments. The health of individuals, societies and cultures is deteriorating due to many factors such as improper lifestyle, sudden controlled and uncontrolled changes, and inconsistency in work, uncontrolled immediate and prolonged stress, pollution of thoughts and feelings, instability-competition-distrust-stress system, system. When the balance of the mind is disturbed, the body becomes degraded and when the body is degraded, the mind becomes more unbalanced. As this vicious cycle continues unabated, many incurable diseases and ailments ensue. Symptoms such as insomnia, indigestion, fatigue, organ dysfunction, musculoskeletal pain, recurrent infectious diseases, irritability, lethargy, hyperactivity, etc. can lead to heart disease, diabetes, cancer, unbalanced blood pressure, migraine, paralysis and many other ailments. Special research is being done globally on the proper use of various art forms to break this vicious cycle of psychiatric disorders. From this, various therapies are being born by examining the physical and psychological effects. 'Music therapy' is playing an important role in modern times for a balanced lifestyle. The combined study of the anatomy of the body and the brain and the well-planned musical art regulates body-mind stress. With the help of music, one can get positive energy for a balanced lifestyle and also exercise for mental flexibility. Music has been given special importance in human life since time immemorial as there are no time constraints in its use due to the ahat and anahat forms of nada. Music therapy is basically the subject of the invention of the two sounds, Ahat and Anahat. Along with Rig Veda, Yajurveda and Atharva Veda, Samaveda may have been born to enrich human life. Therefore, these various sound waves may have been used for the journey of Bhu, Bhuvah, self. But due to various attacks and pollution, the use of music is still widespread. Due to the simplicity of the subject and the limitations of the writing, the present article only tries to provide special information about 'Ahat Nada'. Naturally man uses various sounds and features of sounds to express thoughts-feelings-stress. These characteristics of the sound are the variety, rhythm, intensity and

rhythm of the sound. The stress that gives rise to the right and wrong actions in life, the emotions that give rise to stress, the thoughts that give rise to emotions and the various actions and events in life that give rise to thoughts are all deeply affected by the characteristics of sound, rhythm, intensity and rhythm.

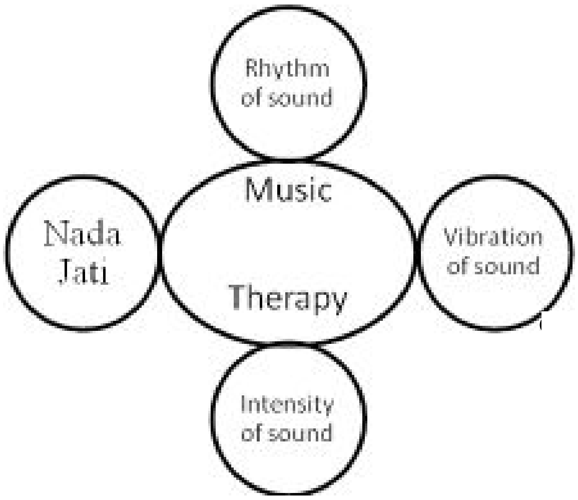

1) Nada Jati- With the sound of each instrument comes some subtle and helpful sounds. They are no different from the original sound. Also the number and order of their movement is different in each instrument. Therefore, the individual characteristics of each instrument are different. This diversity of sounds affects the natural and cultural conditions of living things in many ways. Sound differences affect many factors such as lifestyle, thinking, creativity, temperament, limits, abilities. Hence, despite the social, ideological or emotional differences between people working in certain systems, there are commonalities in their overall standard of living, needs, habits, abilities, limitations, temperament, etc. This difference in sound also causes various changes in the effects of sound on the body and mind. The mind and body can be made more powerful through concentration, flexibility and pervasiveness through the planned use of specific species of sounds, but distorted compositions based on musical sounds. sounds other than musical sounds, e.g. The sound of machinery or vehicles, the noise pollution of many species, the distorted literary noise, the negative internal noise produced by various shapes all create negative stress and worsen the health of body and mind. That is why the words music therapy do not mean 'just listening to favorite songs' but the planned and prudent use of music. Positive effects on the body and brain can be achieved with the help of sound species by in-depth study of anatomy and physiology, psychology, natural and cultural laws, systems, systems and conditions.

2) Vibration of sound - As the vibrations of the sound increase per second, its height increases and if the same vibrations decrease, its height decreases. This is called the amplitude of the sound. Any Nada variety can be made more effective and controlled with the help of Tara. Also, due to the high pitch of the sound, a special effect is found on the anatomy and function. In the production of physical and mental stress, the cycle of events-thoughts-emotions-stress-actions-eventsis uninterrupted. Different levels of expression

of thoughts, feelings and tensions can be reached by using the rhythm of sound. Therefore, Nada's creation is especially useful for art and for physical and mental health. Many effective therapies like Swarasthan Sadhana, Merukhand Sadhana, Shruti Sadhana can be included based on this feature of Nada Tarata.

3) Intensity of sound - Intensity depends on the strength of the sound. The smallness of the sound is the intensity of the sound. It depends on the width of the movement and does not affect the number of vibrations. As a result, the intensity of the sound does not change the rhythm of the sound. As the intensity of sound is very impressive, the limitations of human organs as well as mental and physical rituals affect the health of body-brain through thought-emotion-stress and alternatively. E.g. Drumming: Different for drills, for cine music, for traditional art performances. For the development of physical and mental functioning and for flexibility, this feature of intensity can be used for various types of exercises for concentration, comprehension and effective juice production as well as daily simple activities.

4) Rhythm of sound - The distance between two sounds is the rhythm of the sound. This rhythm of sound is everywhere in the whole creation. Specific rhythms are found in the movement of the wind, the movement of the planets, the tides of the seas, the coming and going of the seasons, the rustling of the leaves, the breathing of living things, even talking, walking, eating, laughing, crying, singing. Our body and mind are constantly trying to become one with this rhythm. That is why people of every culture in the world are affected by the natural diversity. The body and the mind become one with the rhythm of the sounds that can be heard by the ears, just like this anahat rhythm of creation. E.g. Symptoms include increased heart rate, increased blood pressure, increased respiratory rate, constipation, disturbance of mental tranquility, disturbances of mental perception, and loss of mental and physical direction. Speed can be pervasive, creating a comfortable environment for body and mind, or sleep or introspection. This means that the body and mind can be affected by using the rhythm of sound. Also, due to the flexibility in this rhythm, the effects can be felt at the individual as well as the collective level. The rhythm of sound has a special effect on the concentration of the brain, so it is especially effective for the overall functioning of the brain. These four characteristics of Nada not only affect the body and the brain independently, but a combination of them or a combination of all four can lead to numerous and highly effective therapies. For this, instead of just producing dramatic scenes in the film, raga-rasa-siddhanta, raga time table, raga time table, musical literature, ahat-anahat-antarnad, diagram and music, sub-classical-intelligible-traditional music, as well as the

ease of music the cooperation of Sulabh Upasana will be required.

Limitations of musical therapy - Innovative flexibility in musicology can have both positive and negative effects on the body and mind. This is because music therapy also has a number of immediate causes, such as the characteristics of the sounds, the changing physical and mental states, the restlessness of the mind, and the natural or artificial physical-mental limitations. Therefore, the treatment methods and treatment materials used for music therapy should be more planned and practiced by the therapist. When music is used for healing, it is important to consider the individual, especially the nature of the ailment and the physiology, proper analysis of the music therapy and other therapies used to treat it. It has become difficult to do. Such a tool requires regular, well-planned and appropriate guidance. But if this is not possible, then due to improper guidance, shortcuts, desire for perfection, competition, ability, inferiority complex, blindness, etc., this art form becomes more distorted and stressful. Therefore, it is imperative to create "musical therapy" through proper use of musical fluency, proper study of classics, proper and natural facilitation of art through daily simple activities, experimental study of various disciplines in medicine, as well as proper use of social, cultural and spiritual knowledge.

Conclusion - At present, scientists and physicians have proved that eighty percent of the diseases are due to mental causes which are due to stress, anxiety, depression, etc. Raga which is the specialty of Indian music takes the human mind away from all worries and sufferings. Its underlying tone-rhythm, mood-effect affects the mind and brain of a person with its specific effect. And remove diseases. The main cause of mental dementia is an imbalance in the tissues of the brain. The role of ragas is important in maintaining their balance. Music is the subject of blissful feeling and at the same time melodious sounds of raga are also indicative of mental states. There is a movement in music and the activities of our vascular system are also dynamic. The melodious melodies affect our soul only because of the similarities and similarities between the two. The main reason for being healthy is the happiness of the mind and the first effect of music is the happiness of the mind. Fruit therapy is possible with raga-raginis but for that it is necessary for the music therapist to be efficient, to select suitable instrument, raga, style, to assess and evaluate the patient's mental state of interest, environment and acceptance towards music Because the melody of each raga affects the mental state and mental state of each individual in different ways. Harmony between raga rog and patient is the main basis of this medical system. The use of proper raga in proper disease will definitely prove to be beneficial. In order to preserve the great

heritage like music, it is necessary to use it in the context of the new demands of the new age, to understand its usefulness and usefulness. Even today, it is necessary to look at music in the context of social utility. We must have faith in the subject, but it is also important to be aware of knowledge. Not the science of music but music itself needs to be viewed from a scientific point of view.

References -

• Ghoi, C. - Bhakthi and Health, Sri Sathya Sai Books & Publications Trust, Andhra Pradesh

• Kumar, sushil- Hamara adhunik sangeet, kanishk publication, Delhi

• Kumari, Prem- Experiments in music teaching, RadhaPublishers Delhi,

• Theileman, Selena- The music of south Asia, A.P.H Publishing Corporation, New Delhi

•Garg Laxminarayan- Sangeet shodh lekh,Feb.1995,sangget karyalaya,Hathras

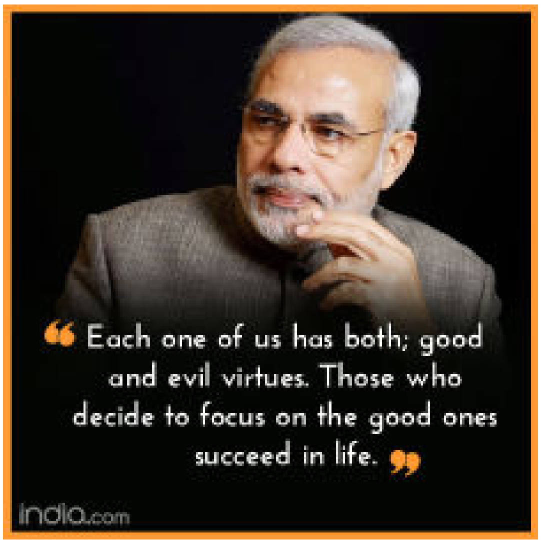

“तबल्यातील एक महत्त्वपूर्ण सौंदर्यतत्त्व – पढ़ंत” एक अध्ययन

डॉ. सचिन कचोटे
तबलावादक
कोल्हापूर.
संपर्क ९६८९४२०२७१

तबल्यातील विविध बोल – बोलसमूह, रचना, रचनाप्रकार, बंदिशी इत्यादी बोलण्याच्या क्रियेला तबल्याच्या भाषेत ‘पढ़ंत’ करणे असे म्हणतात. ‘पढ़ना’ या हिंदी क्रियापदापासून ‘पढ़ंत’ हा शब्द बनला आहे. ज्याप्रमाणे मुखाने म्हणणे म्हणजे ‘पढ़ंत’ त्याचप्रमाणे प्रत्यक्ष वादन करणे म्हणजेच ‘बजाना’, यालाच तबल्याच्या भाषेत ‘बजंत’ असे म्हणतात. शास्त्रीय तबलावादनामध्ये पढ़ंत व बजंत या दोन्ही क्रियांना समसमान महत्त्व आहे. प्रस्तुत ‘तबल्यातील एक महत्त्वपूर्ण सौंदर्यतत्त्व – पढ़ंत’ या लेखामध्ये आपण तबल्यातील ‘पढ़ंत’ या प्रमुख तत्त्वाचे अध्ययन विस्तृतपणे करणार आहोत. तबल्यातील प्रमुख सौंदर्यतत्त्वांपैकी पढ़ंत हे तत्त्व तबला साधकासाठी अतिशय महत्त्वपूर्ण आहे. नियोजित व प्रस्थापित झालेल्या लयीमध्ये स्थिरपणे तबल्यातील विविध रचनांची म्हणण्याची म्हणजेच बोलण्याची क्रिया म्हणजे तबलासाधकाने केलेली ‘पढ़ंत’ होय.

खरं सांगायचे तर ‘पढ़ंत’ हा तबला अध्ययन प्रक्रियेतील साधकावर झालेला पहिला मूलभूत संस्कार होय. पढ़ंत ही अध्ययनाची पहिली पायरी होय, जी साधकाचा तबलावादनातील बौद्धिक संस्कार बनते. तबला शिक्षेमधील साधकावर झालेला हा पहिला मूलभूत संस्कार होय, जे साधकाच्या संपूर्ण अध्ययन प्रक्रियेतील अतिशय महत्त्वाचे अंग असते. अर्थातच, योग्य गुरू आपल्या शिष्याची तालीम तबल्याच्या पढ़ंतनेच करत असतात. सोप्या भाषेत सांगायचे झाल्यास, तबला वादन शिकायचे आहे ना? तर मग तबला आधी समजून घ्या आणि हेचक् तबला समजून घेण्याचे अतिशय महत्त्वाचे माध्यम आहे –‘पढ़ंत’! माणूस कोणतीही गोष्ट करण्यापूर्वी म्हणजेच त्याची प्रत्यक्ष कृती करण्याअगोदर ती गोष्ट जाणून घेतो. बुद्धीने समजून घेतो आणि मगच विचारांती ती कृती प्रत्यक्ष अमलात आणतो, आचरण करतो. अगदी याचप्रमाणे, तबलासाधकासाठी प्रत्यक्ष वादनाची कृती करण्यापूर्वी तबला बुद्धीद्वारे समजून घेऊन, जाणून घेऊन मगच विचारांती वादन करणे म्हणजेच अभ्यासपूर्वक तबलावादन करणे होय. म्हणूनच तबलासाधकावर झालेला पढ़ंतचा बौद्धिक संस्कार अतिशय महत्त्वाचा आहे, असे मला वाटते. पढ़ंत हा तबलासाधकाचा वादनपूर्व विचार असतो व बजंत, त्या विचारांची आचरीत कृती असते म्हणूनच प्रत्यक्ष वादनापूर्वी तबलासाधकाचा ‘विचारांचा रियाज’ होणे म्हणजेच ‘पढ़ंत’ होणे अतिशय महत्त्वाचे आहे. थोडक्यात, तबला साधकासाठी प्रभावी वादनाचा मार्ग त्याने केलेल्या अभ्यासपूर्ण व सौंदर्यपूर्ण पढ़ंतद्वारेच मोकळा होत असतो, असा अनुभव आहे, म्हणूनच तबला साधकासाठी त्याने केलेल्या अभ्यासपूर्ण व विचारपूर्ण पढ़ंतचे महत्त्व अनन्यसाधारण आहे आणि तबलासाधकासाठी हाच ‘बौद्धिक रियाज’ होय !

तबल्याच्या साहित्य संपन्न व समृद्ध अशा भाषेची पढ़ंत करणे तितकेच महत्त्वाचे आहे. तबल्याच्या भाषेची जाणीव ही साधकाने केलेल्या अर्थपूर्ण पढ़ंतमधूनच मिळत असते. खरोखरच, तबल्याच्या भाषेची पढ़ंत क्रिया अतिशय महत्त्वाची आहे. संगीत जगतात तबल्याच्या भाषेचे सामर्थ्य

केवळ पढ़ंतमुळेच कायमस्वरूपी टिकून आहे, असे म्हणणे चुकीचे ठरणार नाही. तबल्याच्या सामर्थ्यशाली संपन्न भाषेचे प्रभावी माध्यम असलेले प्रमुख तत्त्व म्हणजे तबल्याची पढ़ंत होय. म्हणूनच विद्वानांनी पढ़ंतचे केलेले हे कथन अतिशय योग्य आहे, ते म्हणतात, ''पढ़ंत म्हणजे तबल्याच्या भाषेतील व्याकरण होय.'' या अनुभवपूर्ण कथनातूनच पढ़ंतचे महत्त्व आपल्याला समजून येते. भाषा कोणतीही असो परंतु, व्याकरणाशिवाय ती परिपूर्ण होऊच शकत नाही किंवा तिचे काहीच अस्तित्व राहत नाही. व्याकरणाशिवाय भाषेची कल्पनाच करता येऊ शकत नाही. पढ़ंत हे जर तबल्याच्या भाषेतील व्याकरण आहे, तर कल्पना करा की तबल्यामध्ये पढ़ंतचे काय महत्त्व आहे ? तबल्याची भाषा अर्थपूर्ण बनवण्याचे प्रमुख अंग म्हणजे पढ़ंत होय. सांगायचे तात्पर्य एवढेच, संगीत क्षेत्रातील सर्वश्रेष्ठ 'लय—ताल—नाद' तबला वाद्याची पढ़ंत देखील तितकीच श्रेष्ठ आहे. तबल्याचे अस्तित्व व श्रेष्ठत्व पढ़ंतरूपी सौंदर्यतत्त्वाने सिद्ध झाले आहे. तबल्यातील प्रत्येक महत्त्वपूर्ण सौंदर्यतत्त्वांचे महत्त्व त्याच्या रियाजात आहे. म्हणूनच तबल्याची 'पढ़ंत' व 'पढ़ंतचा रियाज' अतिशय महत्त्वाचा आहे.

तबल्यातील विविध रचनांची सातत्यपूर्ण पढ़ंत करणे व त्यानुसार पढ़ंतची मेहनत करणे म्हणजे पढ़ंतचा रियाज होय. साधकासाठी ज्याप्रमाणे त्याचे वादन प्रभावी व परिणामकारक होण्याकरता मनगटाची ताकद, मुष्टी बळ लागते अगदी त्याचप्रमाणे स्वच्छ व स्पष्ट पढ़ंतकरता साधकासाठी जिभेचा व्यायाम महत्त्वाचा ठरतो. याठिकाणी जिभेचा व्यायाम म्हणजेच सातत्यपूर्ण पढ़ंत करणे होय. स्वच्छ व सुस्पष्ट उच्चाराकरता जिभेमध्ये असणारी सुलभता, सहजता, स्पष्ट वाणी उच्चार, स्पष्ट बोल उच्चार, बराबर लयीबरोबरच वरच्या मंजिलीतदेखील बोलांचा तितकाच स्पष्ट उच्चार, जिभेची चपळता इत्यादी आवश्यक गोष्टी आहेत, म्हणूनच तबलासाधकासाठी हा पढ़ंतरूपी जिभेचा व्यायाम अतिशय महत्त्वपूर्ण ठरत असतो. अर्थातच, प्रभावी पढ़ंत होण्याकरता पढ़ंतचा नित्य रियाज होणे तितकेच महत्त्वाचे आहे. तबला साधकाने आपल्या रोजच्या रियाजामध्ये 'बजंत' आणि 'पढ़ंत'च्या वेळेचे नियोजन वेगवेगळे करणे अत्यंत जरुरी आहे. मुष्टिबळाबरोबरच साधकाचे 'बुद्धिबळ' देखील महत्त्वाचे आहे.

''तबलासाधक के प्रभावी बजंत की नींव उसके आत्मविश्वासपूर्ण पढ़ंत में होती है ।
साधक के प्रभावी एवं परिणामकारक बजंत का आगाज़ उसके प्रभावी पढ़ंत में होता है ।''

अर्थात, तबलासाधकाच्या प्रभावी वादनाची पूर्वसूचना त्याने केलेल्या तितक्याच प्रभावी व आत्मविश्वासपूर्ण पढ़ंतमधूनच मिळत असते, असा माझा पूर्वअनुभव आहे.

पढ़ंतसाठी महत्त्वपूर्ण अशी एक रचना —

गततुकडा — तीनताल

(रचना उस्ताद अमीर हुसेन खाँसाहेब)

धगतकीट धात्रकधिकीट कतगदीगन धादींता
कत्तीटतीट केत्रकधिकीट कतगदीगन नगननगन
कत्तीटतीट केत्रकधिकीट कतगदीगन धाऽऽकेत्रक
धिकीटकतग दीगनधाऽऽ केत्रकधिकीट कतदीगनधा

उपरोक्त बंदिशीच्या पढ़ंतचा रियाज करत असताना साधकास त्याचे महत्त्व लक्षात येईल. साधकाने आपल्या नित्य रियाजामध्ये अशा अभ्यासपूर्ण बंदिशींच्या पढ़ंतना प्रामुख्याने प्राधान्य द्यावे. या रचनेचा पढ़ंतचा अभ्यास करत असताना साधकांस जिभेच्या वेगवेगळ्या हलचालींचा अनुभव येईल व पढ़ंतच्या माध्यमातून जिभेसाठी तो एक योग्य व्यायामदेखील होईल. तबल्यातील मूर्धन्य कलाकार—विद्वानांचे अनुभवपूर्ण कथन आहे, ''जैसी पढ़ंत वैसी बजंत, जिसकी जुबान साफ उसका वादन भी उतनाही साफ, वाणी स्पष्ट वादन स्पष्ट ।'' तबलासाधकांसाठी पढ़ंतच्या रियाजाचे महत्त्व अन्यतम आहे. म्हणूनच साधकाने ''पहले पढ़ंत, फिर बजंत'' या महत्त्वपूर्ण सूत्रांचा स्वीकार करून त्याप्रमाणे आपला रियाज

करावा, असे मला वाटते. पहा ना, आपण तबल्याचे बोल, रचना म्हणतो, पुन्हा—पुन्हा बोलतो, वारंवार उच्चारतो याचाच अर्थ असा की, आपण तबला चांगला 'याद' करतो आणि अशा पद्धतीने चांगला याद केलेला तबलाच साधकाच्या चिरंतन स्मृतीत राहतो, साधकाच्या बुद्धीत ते एक कायमस्वरूपी स्मृतीतत्त्व बनून राहते आणि असा चिरंतन तबलाच साधकाचा आत्मविश्वास शेवटपर्यंत तसाच वाढवत राहतो, टिकवतो. अशाप्रकारे, तबल्याच्या पढ़ंतचे महत्त्व आपल्याला लक्षात येते.

साधकाच्या पढ़ंतच्या रियाजासाठी अशीच एक अतिशय उपयुक्त रचना —

लडी — एकताल (रचना उस्ताद शलारी खाँसाहेब)

धाऽतीटधिडतीट	घिडनगधाऽतीट
धिडनगधाऽतीट	घिडतीटघिडनग
धाऽतीटघिडतीट	घिडतीटघिडनग
धाऽतीटघिडतीट	घिडतीटघिडनग
धाऽतीटघिडतीट	घिडतगधाऽतीट
घिडनगधाऽतीट	घिडतीटघिडनग

अशा महत्त्वपूर्ण रचनांच्या नित्य पढ़ंतने तबला साधकाच्या पढ़ंतसाठी आवश्यक अशा 'दमसास' या गुणाची विशेश वृद्धी होते.

पढ़ंतसाठी एक उपयुक्त रचना —

तीनताल — गततुकडा (रचना गुरुवर्य पं. अरविंद मुळगांवकर)

धीटकता कतधागे तीटकत गदीगन नागेतीट
क्डधेतीट कतघें तराऽन

धाऽक्ड धेतीट धीटधी टधीट कत्तीटतीट
केत्रकधिकीट कतगदीगन धाऽऽ

गदीगिंन ऽऽगदी गिंनऽऽगदीगिंन गदींऽघिडनग
तिरकिटतकतक

क्डान्धाऽ तींना घेनातूंना नातूंनाना तूंनानातूं
नाऽनातूं

नानातूंना नातूंनाऽ नातूंनाना तूंनानातूं ना

सीधी गत — बराबर लय तीनताल (रचना उस्ताद हाजी विलायत अली खाँसाहेब)

धीरधीरकिटधाऽ तिरकिटधींऽनाऽ किटधाऽकिटधाऽ
तिरकिटधींऽनाऽ

किटधाऽतिरकिट धींऽनाऽकिटतक तीरतीरतीरधीर
धीरधीरधीरधीर

तीरतीरकिटताऽ तिरकिटतींऽनाऽ किटताऽकिटताऽ
तिरकिटतींऽनाऽ

किटधाऽतिरकिट धींऽनाऽकिटतक तीरतीरतीरधीर
धीरधीरधीरधीर

उपरोक्त दोन्ही रचना पढ़ंतच्या रियाजासाठी अतिशय उपयुक्त आहेत.

बरेचवेळा असे होते की, तबलासाधकासाठी विविध बंदीशी अथवा रचनाप्रकारांची पढ़ंत करताना किंवा त्याचा रियाज करताना फारशी अडचण येत नाही. लिपीबद्ध पद्धतीने समजून घेऊन साधक त्या—त्या रचनांची पढ़ंत समजून करू शकतो. खरी अडचण येते ती, पटी किंवा लयकारी म्हणताना! अर्थात, साधकाने आपल्या पढ़ंतच्या रियाजामध्ये विविध पटी व लयकारीना पढ़ंतसाठी प्राधान्य द्यावे व या अवघड वाटणाऱ्या गोष्टींची मेहनतीने पढ़ंत करून त्या आत्मसात कराव्यात. तबला हे कष्टसाध्य तालवाद्य आहे. ज्याच्यावर साधक प्रामाणिक मेहनतीने प्रभुत्व मिळवू शकतो, ह्यात शंका नाही. म्हणूनच तबलासाधकाने त्याला अवघड वाटणाऱ्या गोष्टींवर गुरूंच्या मार्गदर्शनाखाली मेहनत घेऊन त्या साध्य कराव्यात व सादरी करणासाठी आत्मविश्वासाने प्रस्तुत व्हावे. तबलासाधकाचा हाच खरा 'रियाज' आहे, असे मला वाटते.

विविध पटी व लयकारींची पढ़ंत करण्यासाठी साधकाने प्रथम पटींचा रियाज करावा जेणेकरून त्यांस लय—लयकारीचा रियाजदेखील सोपा होईल आणि त्या गोष्टींची पढ़ंत अनायासही सहजपणे अचूक साधता येईल. पढ़ंतच्या रियाजासाठी पुढे माझा एक अनुभव मी देत आहे, ज्याचा मला चांगला उपयोग झाला व साधकांनाही त्याचा चांगला उपयोग होईल, असा माझा विश्वास आहे. विविध पटींच्या पढ़ंतचा रियाज करत असताना तबलासाधकाने ठेक्याच्या पटींचा रियाज

करावा. प्रथमत निवडलेल्या ठेक्याची एकपट, दुप्पट व चौपटीची पढ़ंत करावी व त्याचा रियाज करावा. याठिकाणी मुद्दाम तिप्पटीच्या रियाजाचा भाग बाजूला ठेवला आहे, ज्याचा रियाज साधकाने वेगळा करायचा आहे. पाहा ना, साधकाने एकपट, दुप्पट, चौपटीचा रियाज करत असताना असे डोक्यात घ्यावे की एकपट – एकपटीची दुप्पट व दुप्पटीची दुप्पट म्हणजेच चौपट याप्रमाणे साधकाने एकपट ते चौपट व पुन्हा चौपट ते एकपट असा आरोही–अवरोही पढ़ंतचा रियाज करावा, अर्थातच योग्यप्रकारे समजून घेऊन व सर्वांत महत्त्वाचे म्हणजे एका लयीमध्ये स्थिरपणे भरी–खाली क्रियेची टाळी दाखवतच पढ़ंत करायची, हे तत्त्व साधकाने अंगी पूर्णपणे बिंबवले पाहिजे. खाली–भरी क्रिया दाखवत टाळी घालून पढ़ंत करणे म्हणजे आपली पढ़ंत एका लयीमध्ये स्थिरपणे सुरू आहे ना ? याची शहानिशा स्वत करणे होय. पढ़ंतच्या या संस्कारामुळे साधकाची लय पक्की होत जाते, पढ़ंत लयदार होते व साधकाचा आत्मविश्वास वाढतो, जे आणखी महत्त्वाचे!

उदा – तीनतालाचा ठेका

एकपट – (बराबर लय)

दुप्पट – (दुगुन)

धा धीं धीं धा । धा
धीं धीं धा ।
ग २

धा तीं तीं ता । ता धीं
धीं धा ।
० ३

दुप्पट – (दुगुन)

धाधीं धींधा धाधीं धींधा । धातीं तींता
ताधीं धींधा ।
ग २
धाधीं धींधा धाधीं धींधा । धातीं तींता
ताधीं धींधा ।
० ३

चौपट – (चौगुन)

धाधींधींधा धाधींधींधा । धातींतींता
ताधींधींधा ।
ग
धाधींधींधा धाधींधींधा । धातींतींता
ताधींधींधा ।
२
धाधींधींधा धाधींधींधा । धातींतींता
ताधींधींधा ।
०
धाधींधींधा धाधींधींधा । धातींतींता
ताधींधींधा ।
३

यामध्ये, तिप्पटीच्या पढ़ंतचा विषय आपण थोडा बाजूला ठेवला. आता त्याचा विचार करू. या आधी आपण एकगुन–दुगुनीच्या पढ़ंतचा विचार पाहिला. खऱ्याअर्थी पाहिले तर पढ़ंतचा हा प्राथमिक संस्कारच मूलभूत संस्कार आहे. हा प्राथमिक संस्कार जर पक्का झाला असेल तर या आधारावरच लय–लयकारीचा पुढील अभ्यास साधक पेलू शकतो व अभ्यासाने त्यास आत्मसातदेखील करू शकतो. पढ़ंतची ही पहिली पायरी अतिशय महत्त्वपूर्ण आहे. आपण याचे सोदाहरण विवेचन करुयात. तिप्पटीच्या पढ़ंतचा अभ्यास करत असताना, सर्वांत पहिले म्हणजे तिगुन लिपीबद्ध पद्धतीने लिहावी व त्यानुसार तिची एका लयीत पढ़ंत करावी. सातत्यपूर्ण पढ़ंतने तिप्पट एका लयीमध्ये म्हणण्याचा एक योग्य संस्कारच आपल्यावर होतो. सुरुवातीला मात्रा मोजत व नंतर टाळीने खाली–भारी क्रिया दाखवत तिप्पट म्हणण्याचा प्रयत्न करावा. याठिकाणी मला एकगुन–दुगुनच्या संस्काराचा पुर्नउल्लेख करावयाचा आहे तो असा – साधकाने आपण तिप्पट म्हणत आहोत, हेच मुळात लक्षात न घेता ही पट म्हणजे माझी बराबर लय आहे असे समजतच तिची पढ़ंत करावी व त्याप्रमाणे आपल्या बुद्धीवर तसे संस्कार करावेत. आता पहा ना, येथे मूळ तिप्पटच बराबर लय असेल तर त्याची फक्त आपल्याला निमपट करायची आहे असे समजून त्याची बराबर निमपट करावी. गणितीनुसार मूळ तिप्पटीची निमपट म्हणजे दीडपट होईल. परंतु, साधकाने प्राथमिक स्तरावर तिप्पट व दीडपट असे लक्षात न घेता मी

ठेक्याची बराबर लय म्हणजेच एकपट व निमपट म्हणत आहे असे समजावे. याची फलश्रुती म्हणजे खरे तर तिप्पटीचा व दीडपटीचा अभ्यास, जो अनायासही तयार होत असतो. म्हणूनच अगोदर सांगितल्याप्रमाणे साधकाने यापूर्वी केलेला एकपट–दुप्पट–चौपटीचा हा मूळ संस्कारच अतिशय महत्त्वाचा आहे, ज्याच्या आधारावरच पुढील लय–लयकारीची इमारत मजबूत व पक्की होत असते. तबलासाधकांनी याचा अनुभव जरूर घ्यावा व त्याप्रमाणे लय–लयकारीची पढ़ंत व त्याचा रियाज करावा. यापद्धतीचा साधकांना नक्कीच चांगला उपयोग होईल, असा माझा विश्वास आहे.

तीनताल–तिगुन

धाधींधीं धाधाधीं । धींधाधा तींतींता ।
ग
ताधींधीं धाधाधीं । धींधाधा धींधींधा ।
२
धातींतीं ताताधीं । धींधाधा धींधींधा ।
०
धाधींधीं धाधातीं । तींताता धींधींधा ।
३

मूळ लयीची निमपट म्हणजेच तिगुनीची निमपट–दीडपट म्हणजेच दीडी/आड लयकारी

तीनताल–तिगुन

धाधींधीं धाधाधीं । धींधाधा
तींतींता ।
ग
ताधींधीं धाधाधीं । धींधाधा
धींधींधा ।
२
धातींतीं ताताधीं । धींधाधा
धींधींधा ।
०
धाधींधीं धाधातीं । तींताता
धींधींधा ।
३

मूळ लयीची निमपट म्हणजेच तिगुनीची निमपट–दीडपट म्हणजेच दीडी/आड लयकारी

धाऽधीं ऽधींऽ धाऽधा ऽधींऽ
।
ग
धींऽधा ऽधाऽ तींऽतीं ऽताऽ
।
२
ताऽधीं ऽधींऽ धाऽधा ऽधींऽ
।
०
धींऽधा ऽधाऽ धींऽधीं ऽधाऽ
।
३

वरील पद्धतीने याचप्रमाणे पाचपट–कुआड (सव्वापट) आणि सातपट–बिआड (पाऊणेदोनपट) या लय–लयकारीसाठी साधकांनी त्यापद्धतीने पढ़ंतचा रियाज केला तर त्या–त्या लयकारी कायमस्वरूपी पक्क्या बनून साधकाचा लयीवरील पक्केपणा आणखीनच वाढू शकेल, खरं तर हाच साधकाच्या पढ़ंत कौशल्याचा विकास असेल, ह्यात शंका नाही. अशाप्रकारे, विविध पटी व लयकारींचा पढ़ंतचा योग्य मेळ घालत त्याप्रमाणे पढ़ंतचा रियाज करता येईल. म्हणूनच तबल्यातील सर्व रचनाप्रकारांबरोबरच पटी व लय–लयकारींच्या पढ़ंतच्या माध्यमातून सूक्ष्म अभ्यास व रियाज होणे आवश्यक आहे.

एकपट ते आठपटीसाठी पढ़ंतसाठी उपयुक्त बोलसमूह –

एकपट – धा
दुप्पट – धागे
तिप्पट – धागेगे
चौपट – धागेगेगे
पाचपट – धागेधिगेगे
सहापट – धागेगेधिगेगे
सातपट – धागेगेधिगेधिगे
आठपट – धागेगेगेधिगेगेगे

वरीलप्रमाणे बोलसमूहांचा आधार घेत साधकांनी त्या त्या पटींकरता पढ़ंतचा रियाज करावा.

उदाहरणार्थ – तिप्पटीसाठी वरीलप्रमाणे पढ़ंतचा रियाज;

तिप्पट – धागेगे

'धागेगे' या बोलसमूहाचा आधार घेत तीनतालाची तिगुन –

धागेगे धिगेगे धिगेगे धागेगे ।
ग
धागेगे धिगेगे धिगेगे धागेगे ।
२
धागेगे तिकेके तिकेके ताकेके ।
०
ताकेके धिगेगे धिगेगे धागेगे ।
३

वरील बोलपंक्तींनुसार तीनतालाच्या ठेक्याचे वजन हे तिप्पटीसाठी आधार बनत असते व हाच आधार पक्का करत पुढे साधकाने तीनतालाची तिप्पट ठेक्यातील मूळ बोलांचा आधार घेत पूर्ण करावी. पढ़ंतसाठी असा पायऱ्या पायऱ्यांचा अभ्यास किंवा अवस्था साधकासाठी खूप महत्त्वाचा आधार बनत असतात आणि यातूनच साधकाचा पढ़ंतसाठीचा आत्मविश्वास बळावत असतो व तो लयदार होत असतो.

वरील पायऱ्यांच्या अभ्यासपूर्ण पढ़ंत नंतर साधकाचे अंतिम उद्दिष्ट असते — ठेक्याची नियोजित पट टाळी दाखवत पूर्णपणे म्हणणे.

तीनताल — तिगुन व दीडपट, मूळ ठेक्याची तिगुन व दीडी लयकारी एकाच आवर्तनात;

धाऽधीं ऽधींऽ धाऽधा ऽधींऽ
।
ग
धींऽधा ऽधाऽ तींऽतीं ऽताऽ
।
२
ताऽधीं ऽधींऽ धाऽधा धींधींधा
।
०
धाधींधीं धाधातीं तींतींता धींधींधा
।
३

तबलासाधकाने याप्रमाणे पढ़ंतचा रियाज करावा व अनुभव घ्यावा. साधकाने मनाशी एक मात्र पक्के करावे की ज्या—ज्या गोष्टी आपण गुरूंकडून शिकतो किंवा शिकतोय त्या त्या सर्व रचनांची वादनापूर्वी म्हणजेच प्रत्यक्ष बजंत करण्यापूर्वी 'पढ़ंत' ही झालीच पाहिजे. आणि ही पढ़ंत योग्य व अचूक, लयदार होणे तितकेच महत्त्वाचे ! म्हणूनच तबलासाधकांनी 'पहले पढ़ंत, फिर बजंत', या सूत्राचा स्वीकार करत त्याचे स्वागत रियाजात करावे. साधकांनी आपल्या नित्य पढ़ंतच्या रियाजा मध्ये ठेक्यांच्या विविध पटी, लयकारी, बेदम तिहाईयाँ, वेगवेगळ्या दमचे चक्रदार, बेदम—अतिबेदम चक्रदार, कठिणतम व क्लिष्ट रचना इत्यादींना प्रामुख्याने प्राधान्य देत त्यांत सातत्य ठेवणे महत्त्वाचे आहे.

पाऊणच्या दमचा चक्रदार मध्यलय तीनताल / एकताल

(रचना गुरूवर्य पं. आमोद दंडगे)

धाऽदींऽकिटतक तीटकताकत्धागे
तीटकतगदीगन नागेतिरकिटघेंऽ
ग
तराऽन्धाऽघेंऽ ऽतधाऽघेंऽ
ऽतधाऽघेंऽ ऽतधाऽ
०
नऽधाऽदींऽकिट तकतीटकताकत्
धागेतीटकतगदी गननागेतिरकिट
ग
घेंऽतराऽन्धाऽ घेंऽऽतधाऽऽऽ
घेंऽऽतधाऽऽऽ घेंऽऽतधाऽऽऽ
०
ऽनधाऽदींऽ किटतकतीटकता
कत्धागेतीटकत गदीगननागेतिर
ग
किटघेंऽतराऽन् धाऽघेंऽऽत
धाऽऽऽघेंऽऽत धाऽऽऽघेंऽऽत
धा
०

तीनताल रेला (रचना — मार्गदर्शक गुरू डॉ. आनंद नायगांवकर)

मुख —

धाऽऽऽतिरकिट तिरकिटधाऽधिड
नगतिरकिटतिर किटताऽतिरकिट।
ग
धाऽधिडनगतिर किटतिरकिटधाऽ
धिडनगतिरकिट तकताऽतिरकिट।
२
ताऽऽऽतिरकिट तिरकिटताऽकिड
नगतिरकिटतिर किटताऽतिरकिट।
०
धाऽधिडनगतिर किटतिरकिटधाऽ
धिडनगतिरकिट तकताऽतिरकिट।

३

लयकारी – पढ़ंतसाठी काही उपयुक्त पायऱ्या ;

१ में ५ – एकएकक दोनदोनन /
एकदोनतीनचारपाच / १२३४५

२ में ५ – एकदोनती नचारपाच
(कुआड)

४ में ५ – एकएकदो नदोनतीन तीनचारचा
रपाचपाच

वरील पायऱ्या बोलांचा आधार घेत खालीलप्रमाणे;

१ में ५ – धींनाधींधींना तींनाधींधींना

२ में ५ – धींऽनाऽधीं ऽधींऽनाऽ
(कुआड)

४ में ५ – धींऽऽऽना ऽऽऽधींऽ
ऽऽधींऽऽ ऽनाऽऽऽ

वरीलप्रमाणे आधार घेत ५ में ४ लयकारीसाठी

५ में ४ – एकएक कदोनदो
ननतीन तीननचा रचारर
धाऽधाऽ
ऽधींऽधीं ऽऽधींऽ धींऽऽधा
ऽधाऽऽ

५ में ४ – धाऽऽऽ ऽधींऽऽ
ऽऽधींऽ ऽऽऽधा ऽऽऽऽ

याचप्रमाणे४ में ३ साठी धाऽऽ ऽधींऽ
ऽऽना ऽऽऽ

याप्रमाणे 'पढ़ंत' करत सातत्यपूर्ण रियाजाने आपल्याला आत्मविश्वासाने या लयकारीची पढ़ंत अशापद्धतीने साध्य होईल.

अशाप्रकारे, तबलासाधकास विविध कठिणतम लयकाऱ्यांचा पढ़ंतचा रियाज करता येईल. विविध पटी व लयकारीच्या पढ़ंतचे महत्त्व अनन्यसाधारण आहे. ह्यातूनच साधकाचे लयांग पक्के होईल आणि पढ़ंत व बजंत दोन्ही लयदार होईल.

तबलासाधकासाठी खऱ्याअर्थी, त्याचे वादन कौशल्य विकसित होते, त्याच्या बुद्धि कौशल्यातूनच म्हणजेच पढ़ंतमधून ! तबला जगतातील विद्‌वान –गुरुजनांच्या रचित या सौंदर्यपूर्ण बंदिशीतील महत्त्व आपल्याला त्या बंदिशींच्या पढ़ंतमधून लक्षात येते.

आत्तापर्यंत आपण तबल्यातील एक महत्त्वपूर्ण सौंदर्यतत्व व तबल्यातील प्रमुख अंग पढ़ंतविषयी चर्चा केली, त्याचे महत्त्व जाणून घेतले. परंतु, पढ़ंतचा रियाज करायचा म्हणजे नेमके काय करायचे ? याची चर्चा आता आपण पुढे नेऊयात. कोणतीही रचना प्रत्यक्ष वादनापूर्वी तिची विविध लयअंगाने पढ़ंत करायचीच, हे तत्त्व तबलासाधकाने आपल्या मनाशी ठामपणे बिंबवले पाहिजे, रचनांची पढ़ंत लयदार, स्वच्छ, स्पष्टतेने करत त्या त्या रचनांचे योग्य संस्कार आपल्या बुद्धीवर केले पाहिजेत. खरे सांगायचे झाल्यास, तबलासाधकाचा अशापद्धतीचा पढ़ंतचा रियाजच त्याच्या विचारांचा रियाज बनेल, बुद्धीचा रियाज बनेल ज्याला साधकाचा 'बौद्धिक रियाज' म्हणता येईल, असे मला वाटते. तबलासाधकासाठी रियाज क्रियात्मक असो वा बौद्धिक, त्यामध्ये सातत्यता असणे अतिशय महत्त्वाचे आहे म्हणूनच साधकाच्या या पढ़ंतरूपी बौद्धिक रियाजामध्ये साधकाने वारंवार सातत्यपूर्ण पढ़ंत करणे व त्यांस आपल्या नियोजित रियाजातील एक प्रमुख अंग बनवणे महत्त्वाचे आहे. पढ़ंतला आपल्या नित्य रियाजामध्ये वेगळा वेळ देऊन त्यांस रियाजातील एक अविभाज्य भाग बनवून त्यामध्ये कायमस्वरूपी स्थिर राहणे महत्त्वाचे आहे. थोडक्यात, साधकासाठी 'बजंत' व 'पढ़ंत' दोन्हीसाठी वेगवेगळा वेळ देणे अतिशय महत्त्वाचे आहे.

एखादा रियाजी गायक ज्याप्रमाणे एक–एक सुरांना आळवत त्यांचा रियाज करत असतो अगदी त्याचप्रमाणे, तबलासाधकाने एक–एक बोलांची पढ़ंत व त्याचा रियाज करणे महत्त्वाचे आहे. पढ़ंतचा रियाज म्हणजेच प्रत्येक बोलांची आळवणूक होईल. शुद्ध व स्पष्ट उच्चार करत त्यातील नादांची अनुभूती सूक्ष्मतेने घेणे, हाच पढ़ंतचा रियाज आहे. आध्यात्मिक क्षेत्रामध्ये नामस्मरणाचा महिमा आपण जाणतोच, त्याचप्रमाणे संगीतक्षेत्रात देखील त्याचे महत्त्व तितकेच अगाध आहे. शास्त्रीय संगीतातील सूर, बोल (नादाक्षर) यांचे सतत उच्चारण करणे हे एक प्रकारचे संगीतसाधकाने केलेले नामस्मरणच आहे. म्हणूनच तबल्यातील पढ़ंत म्हणजे तबल्याचे नामस्मरण होय, अशी भूमिका ठेवून जर का

साधकाने त्यापद्धतीने रियाज केला तर नक्कीच त्यास अपेक्षित फलप्राप्ती होईल, हे निश्चित ! म्हणूनच तबल्यातील पढ़ंत म्हणजे तबल्याच्या भाषेचे 'शब्द—संकीर्तन' आहे, असे मला वाटते. यावरूनच आपल्याला तबल्यातील पढ़ंतचा महिमा लक्षात येईल.

पढ़ंतसाठी आणखी एक उपयुक्त रचना ; (सौजन्य — मार्गदर्शक गुरू प्रो. डॉ. अजय अष्टपुत्रे)

धीरधीरकिटतक	धीरधीरकिटतक
धीरधीरधीरधीर	धीरधीरकिटतक
ग	
धाऽतिरकिटतक	धीरधीरकिटतक
धाऽतिरकिटतक	तींनाकिटतक
०	
तिरकिटतकधीर	धीरधीरकिटतक
धीरधीरधीरधीर	धीरधीरकिटतक
२	
धाऽतिरकिटतक	धीरधीरकिटतक
धाऽतिरकिटतक	तींनाकिटतक
और खाली	
३	

तबल्यातील पढ़ंतचा रियाज करत असताना तबलासाधकाचे श्वासावरील नियंत्रण अतिशय महत्त्वाचे आहे. श्वास—उच्छ्वासाचे योग्य संतुलन ठेवत पढ़ंत केली तर ती नक्कीच परिणामकारक होईल. अशाप्रकारे, समजून केलेल्या पढ़ंतचे स्वरूप केवळ बोल उच्चारण पुरतेच मर्यादित न राहता त्या पढ़ंतला एक प्रकारची गेयता प्राप्त होईल व तशी अनुभूती आपल्याला मिळू शकेल. अर्थातच, साधकाच्या श्वासावरील नियंत्रणासाठी त्यास योग्य गुरूंच्या मार्गदर्शनाखाली केलेला पढ़ंतचा रियाज कारणीभूत ठरत असतो. त्याचबरोबर साधकाने योग्य मार्गदर्शनाच्या आधारे नित्य योग व प्राणायाम करणेदेखील तितकेच महत्त्वाचे आहे. पढ़ंत असो वा बजंत तबल्याच्या सातत्यपूर्ण रियाजाकरिता साधकाचे स्वस्थ शरीर व निरोगी आरोग्य संपदा असणे अतिशय महत्त्वाचे आहे. तबल्याचा रियाज हा निरोगी शरीर संपदेने, शुद्ध भावाने व प्रसन्न चित्ताने होणे महत्त्वाचे आहे. म्हणूनच तबलासाधकासाठी आपला नियोजित रियाज नित्यपणे करण्यासाठी शरीराच्या अंर्त—बाह्य व्यायामाची सातत्यता असणे आवश्यक आहे. या सर्वांबरोबरच अभ्यासपूर्ण पढ़ंतसाठी तबलासाधकाचा तबल्यातील भाषेचा म्हणजेच व्याकरणाचा अभ्यास असणे अतिशय महत्त्वाचे ठरते. साधकासाठी बोलांच्या स्पष्ट उच्चाराबरोबरच दीर्घ व ऱ्हस्व उच्चार, स्वर व्यंजन उच्चारातील दीर्घता, लघुता, विश्राम, वाक्यांची पूर्णता (आवर्तन), श्वासावरील नियंत्रण ठेवत केलेला उच्चार, उच्चारातील आवाजाचा लहान—मोठेपणा (नाद), उच्चारादरम्यान शेवटपर्यंत टिकून ठेवलेला दमसास, प्रत्येक बोलाची साफ व तितकीच स्वच्छ उच्चारण आणि त्याचबरोबर प्रभावी व परिणामकारक पढ़ंतबरोबरच 'लयदार पढ़ंत' असणे इत्यादी महत्त्वाचे गुण असणे आवश्यक आहे. तबलासाधकाने आपल्या सौंदर्यपूर्ण पढ़ंत करता अशी गुण—विशेषणे अंगी जोपासली पाहिजेत, त्याचे आचरण केले पाहिजे. अर्थातच, साधकाच्या सातत्यपूर्ण रियाजातूनच हे शक्य आहे, अन्यथा नाही !

तबलासाधकाने तबल्यातील प्रत्येक रचना, विविध संकल्पना इत्यादींचे सखोलपणे अभ्यास करत तबल्यातील स्वरप्रधान, व्यंजनप्रधान, स्वर—व्यंजन संतुलित रचना, दायाँ प्रधान—बायाँ प्रधान, दायाँ—बायाँ प्रमाणित (प्रमाणबद्ध) रचना इत्यादींची पढ़ंत दररोज नित्यनियमाने करणे आवश्यक आहे. अशाप्रकारे, साधकाने पढ़ंतच्या रियाजाचा हा 'रिवाज' नित्यपणे जोपासणे गरजेचे आहे. पढ़ंतचा रियाज कधी करावा ? याचे माझ्या अनुभवाने उत्तर आहे, अगदी सकाळी—सकाळी, ज्यावेळी आपण ताजेतवाने असतो, प्रसन्नचित्त व स्वस्थ व आनंदी असतो. यावेळी शक्तीचा संचय असतो, एक प्रकारची शरीरामध्ये ऊर्जा सामावलेली असते आणि त्या सर्व गोष्टी पढ़ंतसाठी अतिशय पोषक असतात. पहाटेच्यावेळी केलेला पढ़ंतचा रियाज सर्वच दृष्टीने साधकासाठी विधायक—परिणामकारक व योग्य असतो. पहाटेच्यावेळी केलेल्या पढ़ंतने साधकाच्या स्वरयंत्रास चांगल्या

प्रकारचा व्यायाम मिळतो जेणेकरून साधकाच्या उच्चारणात चांगलीच सुधारणा होते, काही उच्चार दोष असतील तर ते देखील सुधारतात आणि अशाप्रकारे जिभेलाही एक प्रकारचा चांगला व्यायाम मिळतो. साधकाची पढ़ंत प्रभावी व परिणामकारक बनते. थोडक्यात, आपल्या सौंदर्यपूर्ण पढ़ंतसाठी साधकास चांगला गळा लाभतो.

साधकाने आपल्या गुरुजनांची, विद्वान–कलाकारांनी केलेली तबल्याची पढ़ंत जरूर ऐकत राहावी. संगीत विषयाचा 'ऐकणे' हा महत्त्वाचा संस्कार मानला जातो. साधकाने हा संस्कार स्वीकारत त्याचे त्यापद्धतीने आचरण करावे. ज्या–ज्या गोष्टी आपण शिकलो किंवा ज्या ज्या गोष्टी आपण तबल्यावर वाजवतो, त्या सर्वांचीच सर्वप्रथम पढ़ंत ही केलीच पाहिजे, असे मनाशी पक्के करावे. आत्मविश्वासपूर्ण पढ़ंतमध्येच साधकाच्या प्रभावी वादनाचे प्रतिबिंब दिसत असते. साधक ज्यावेळी आपली सौंदर्यपूर्ण पढ़ंत करत त्या रचनांचे प्रभावी वादन करतो त्यावेळी गुरुजन–विद्वानांची कौतुकाची दाद घ्यायला तो सर्वार्थाने पात्र ठरतो आणि खऱ्या अर्थाने आपल्या कलेला आत्मविश्वासपूर्णपणे न्याय देतो, असे म्हणणे चुकीचे ठरणार नाही. एखाद्या रचनेमध्ये प्राण ओतण्याचे काम हे खरंच साधकाने केलेल्या पढ़ंतमधूनच होत असते, पढ़ंतच्या माध्यमातूनच ती रचना सजीव साकार बनून प्रस्तुत होत असते. खरोखरच, पढ़ंत हे तबल्यातील केवळ सौंदर्यतत्त्व नसून ते एक 'प्राणतत्त्वच' आहे, असे म्हणणे सर्वार्थाने योग्य ठरेल, असे मला वाटते.

विद्वानो ने कहा है, ''जिसकी जुबान साफ उसका वादन भी उतनाही साफ । कहावत का मतलब यही है की, अपनी शारीरिक क्रियाओं का नियंत्रण केंद्र मस्तिष्क है ।''

तबला अध्ययन प्रक्रियेतील 'पढ़ंत'रूपी हा सर्वात पहिला व मूलभूत महत्त्वपूर्ण असा बौद्धिक संस्कार प्रत्येक तबलासाधकाने अंगीकारावा, जोपासावा आणि त्याप्रमाणे रियाज करत आपल्या प्रभावी व सौंदर्यपूर्ण वादन–सादरीकरणासाठी आत्मविश्वासाने प्रस्तुत व्हावे आणि आपली सफल प्रस्तुती करावी. संगीत कला ही सादरीकरणाची कला आहे. संगीत कले मध्ये 'रियाज' हे एक मूलभूत सत्य आहे. तबलावादन कलेमध्ये रियाजाचे महत्त्व अनन्य साधारण आहे. म्हणूनच तबलासाधकाने तबल्यातील एक महत्त्वपूर्ण सौंदर्यतत्त्व 'पढ़ंत'चे महत्त्व लक्षात घ्यावे, साधकाचा हाच खरा 'बौद्धिक रियाज' आहे. तबलासाधकाने केलेला हा पढ़ंतरूपी बौद्धिक रियाजच त्याचा सर्वांगीण वादन–विचार बनेल, जो चिरंतन असेल !

संदर्भग्रंथ सूची

१.मुळगांवकर, अरविंद, ''तबला'', मराठी, पॉप्युलर प्रकाशन, मुंबई, तिसरी आवृत्ती, २०१६, पृ. ३०९

२.साक्षात्कार मुळगांवकर, अरविंद, ज्येष्ठ तबलागुरू व विचारवंत, मुंबई, दि. ५ जानेवारी २०१८

३.मुळगांवकर, अरविंद, ''इज़ाजत'', हिंदी, अभिनंदन प्रकाशन, कोल्हापूर, प्रथम आवृत्ती, २००८, पृ. २०३

४.साक्षात्कार दंडगे, आमोद, तबलागुरू व विचारवंत, कोल्हापूर, दि. २५ डिसेंबर २०२०

५.साक्षात्कार नायगांवकर, आनंद, तबलागुरू व विचारवंत, मुंबई, दि. २६ जानेवारी २०२१

६.साक्षात्कार अष्टपुत्रे, अजय, तबला प्रोफेसर व विचारवंत, बडोदा, दि. १९ ऑक्टोबर २०२१

७.माईणकर, सुधीर, ''तबलावादन कला और शास्त्र'', हिंदी, गांधर्व महाविद्यालय प्रकाशन, मिरज, प्रथम आवृत्ती, २०००, पृ. २०३

संतमत के परिशिष्ट पर संगीत की भूमिका

डॉ. रोज़ी श्रीवास्तव
व्याख्यता संगीत (कंठ)
राजकीय महारानी सुदर्शन महाविद्यालय
बीकानेर।
ई–मेल:– dr.rosy7sur@gmail.com
मो. नं.:– ९४१४४३०९४१, ०९७८४७२८९८१

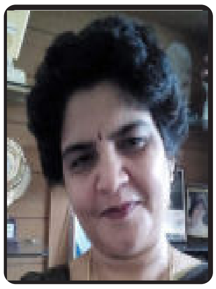

इस सृष्टि का हर जीव अपने प्रारब्ध से जुड़ा है, जन्म–मरण के जटिल चक्र से निकल पाना जीव की सीमा से परे है अत: इस चौरासी के बन्धन से छुटकारा पाने के लिये उस परम तत्व की खोज आवश्यक है जिसका कि वह अंश है। धर्म, आध्यात्म और रूहानियत तीनों ही सीढ़ियाँ जीव को या कहें कि आत्मा को, परमात्मा से यानि उस परम तत्व से जोड़ती हैं और उस परम तत्व से एकीकार होना ही ''ब्रह्मानन्द सहोदर'' से साक्षात्कार करना है जो सुख–दु:ख की परिधि से परे है। ईश्वरीय संरचना में मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी है जिसमें बुद्धि है, विवेक है, सोचने–समझने की, उसे क्रियान्वित करने की शक्ति है अत: स्वभाविक ही यह प्रश्न मस्तिष्क में कौंध जाता है कि कौनसा मार्ग अपनायें जिससे सच्चिदानन्द की प्राप्ति हो और परम आनन्द मिल सके। वैसे तो विभिन्न धर्मों, सम्प्रदायों एवं दार्शनिक परम्पराओं में मत मतान्तरों की एक लम्बी श्रृंखला रही है। संक्षेप में मैं यहाँ संतमत के सन्दर्भ में उन सभी बिन्दुओं पर चर्चा करने के साथ–साथ सभी का ध्यान आकृष्ट करना चाहूंगी कि संगीत रूहानियत से परोक्ष–अपरोक्ष रूप से किस प्रकार जुड़ा है? संगीत की क्या भूमिका है? क्या महत्ता है?

इस सृष्टि के दो पक्ष हैं– लय एवं प्रलय। लय अर्थात् कम्पन, जीवन और श्वास। प्रलय अर्थात् बिना लय के कम्पनहीन, जीवनहीन अर्थात् विनाश। हमारे ऋषि–मुनियों, संगीत मनीषियों ने सृष्टि एवं संगीत के उद्गम में, उसके मूल में लय या कम्पन के अस्तित्व को स्वीकारा है। भारतीय संगीतज्ञों ने कम्पन से उत्पन्न ध्वनि को नाद कहा है। ''संगीत–दर्पण'' में इसके दो भेद माने हैं– आहत और अनाहत। के.वासुदेव शास्त्री के अनुसार देह पिण्ड यानि शरीर में बिना आधात् किये नाद का अविर्भाव निरन्तर हो रहा है जिसे अनाहत अथवा अनहद कहा गया है। संत फकीरों ने इसे अनहद बाणी, धुर की बाणी कहा है। जिसकी कोई हदना हो, सीमा न हो, वह अगम, अलख, अगोचर है, आनन्द दायक है, मुक्तिदायक है। हमारे इन्द्री और मन बाहरी विषयों में आसक्त होने के कारण इसे सुन नहीं सकते हैं, जो शब्द घर्षण या आधात् स्पर्श से उत्पन्न हो, वह आहत नाद है, परन्तु सभी ध्वनियाँ संगीत उपयोगी नहीं होती, जो नाद कर्णप्रिय, मनोरंजनकारी, कल्याणकारी है, उसे ही सांगेतिक ध्वनियों के रूप में स्वीकारा है। प्रस्तुत लेख का विषय ''संतमत के परिशिष्ट पर संगीत की भूमिका'' अपने आप में ही कई पहलुओं को समेटे हुए है, जो सदा से ही भारतीय चिन्तन श्रृंखला का केन्द्र बिन्दु रही है। यहाँ सर्वप्रथम यह जानना आवश्यक है कि संतमत क्या है? इसकी क्या पृष्ठभूमि रही है? क्या संगीत के माध्यम से इसकी साधना से हम अपने साध्य या आराध्य ईष्ट को प्राप्त कर सकते हैं? संतमत की विचारधारा में इसे किस दृष्टिकोण से देखा जाता रहा है? इस पर विचार करना आवश्यक है।

''संत'' शब्द मूलत: संस्कृत से आया है। यह संस्कृत के 'सन्' का बहुवचन है, जो आगे 'अस्' धातु से बने 'सत' का पुल्लिंग रूप है और जिसका अर्थ होने वाला या 'रहने वाला' है।

'संत' शब्द का मूल अर्थ ''शुद्ध अस्तित्व'' ''निर्मलसत्ता'' या ''अमरहस्ती' बनता है। यह शब्द उस परम तत्व के लिये प्रयुक्त किया जाता है जिसका कभी नाश नहीं हो सकता, जो सदा एकरस, एकरंग, और एक रूप रहता है, जिसे ''सत्य'' भी कहा जा सकता है।१ वेद उपनिषदों में संत की परमात्मा की भांति ''सत्य, नित्य और अनन्त'' कहकर प्रशंसा की गई है।२ शंकराचार्य ने ''विष्णु'' सहस्त्रनामा के टीका (१२) में लिखा है कि ज्ञान और नम्रता बढ़ाने के लिए स्वयं परमात्मा संत के रूप में विराजमान होता है, इसलिये वह संत है। हजरत ईसा ने इसे देहधारी३ शब्द या देहधारी परमेश्वर कहा है।४ यहाँ मत का अर्थ है विचारधारा, परम्परा अर्थात् संतों की विचारधारा ही संतमत है। मैं यहाँ संतमत में साधना के अर्थ को भी संक्षेप में बताना आवश्यक समझती हूँ। ''साधना'' का अर्थ मन को किसी विषय में एकनिष्ठ भाव से संयुक्त करना अत: किसी साध्यवस्तु की प्राप्ति के लिए जो प्रयत्न किया जाता है, उसे ''साधना'' कहते हैं।५

अनादि काल से कुछ बुनियादी प्रश्न मनुष्य के मन, मस्तिष्क में सहज ही उठते रहे हैं कि सृष्टि की रचना कैसे हुई? किस उद्देश्य की सिद्धी के लिए रची गई है? किस कर्ता की रचना है? इसके संचालन के पीछे कौनसे नियम हैं? मनुष्य कहाँ से आया, कहाँ जा रहा है? सृष्टिकर्ता से उसका क्या संबंध है? मृत्यु के पश्चात् क्या मनुष्य का अस्तित्व समाप्त हो जायेगा? कला विज्ञान एवं दर्शन ही नहीं बल्कि मानवीय प्रयत्न का एकमात्र उद्देश्य इन प्रश्नों का उत्तर ढूंढना है। ताकि मनुष्य जीवन को अधिक सार्थक, सफल एवं सुखी बनाया जा सके। अनन्त काल से मनुष्य स्थायी सुख एवं शान्ति की तलाश में भटक रहा है। यह परम सुख कब, कहाँ और कैसे मिले यह कह पाना अत्यन्त कठिन है। श्रीमद् भगवद् गीता एवं अन्य उपनिषद, वेदों में शांति साधना का आधार, इन्द्री वशीकरण, मन बुद्धि की निर्मलता और पारब्रह्म से तदात्कार होना बताया है। नाद ब्रह्म के उपासकों ने साध्य की प्राप्ति हेतु संगीत साधना का सुगम मार्ग प्रशस्त किया है। डॉ. सुभद्रा चौहान के अनुसार ''भारतीय चिन्तन धारा की एक बड़ी मौलिक विशेषता यह रही है कि सभी विधाओं, कलाओं एवं शास्त्रों आदि का अन्तिम लक्ष्य आत्मानुभूति माना गया है।''६ परात्पर ब्रह्म की अनुभूति प्रणव की साधना से अथवा नाद की उपासना से ही सिद्ध होती है।७ सांगेतिक दृष्टि से देखें तो अनाहत नाद उपास्य है और आहतनाद साधन। प्रसिद्ध सूफी संत इनायत खां के अनुसार विश्व में साधना के, उपासना के जितने भी माध्यमहैं, सभी में संगीत को सर्वोत्तम माना है। संगीत उस पूर्ण शान्ति को प्राप्त करता है जो निर्वाण या हिन्दुओं की भाषा में समाधि है।८ स्वामी तुलसीदास जी ने 'नवधा—भक्ति' में इसका विवेचन किया है। ''नाम संकीर्तन'' इनमें से एक प्रकार है जिसमें साध्य या इष्ट अराधना के लिए संगीत को श्रेष्ठ माध्यम के रूप में बताया है। श्रीगुरू ग्रंथ साहिब में भी संगीत को ही आधार माना है। हिन्दु धर्म के कृष्ण भक्तिकाल परम्परा के समस्त संतों ने भजनों के माध्यम से संगीत को अपनी आध्यात्मिक साधना का अंग बनाया है। जिसमें सूरदास जी, कृष्णदास, नन्ददास, चतुर्भुजदास, गोविन्ददास, मीराँ, स्वामी हरिदास आदि मुख्य हैं। इस्लाम धर्म में भी चिश्ती परम्परा एवं सूफी परम्परा में संगीत को प्रधानता दी गई है। भारतीय दर्शन की चिन्तन परम्परा में ''सत्यम्—शिवम्—सुन्दरम्'' की त्रिपुटी से प्रेरित होकर भी ''चतुष्टय—पुरूषार्थ'' की अवधारणा को स्वीकारा है। मोक्ष प्राप्ति, आनन्द प्राप्ति ही हर मानवीय जीवन का लक्ष्य है, उद्देश्य है। संतमत की दृष्टि से देखें तो वह एक आदर्श जीवन स्थापित करके अपने व्यवहारिक जीवन एवं सच्चे आनन्द की प्राप्ति हेतु सामंजस्य बिठाने का मार्ग

प्रशस्त करता है। संतमत का मूल उद्देश्य मनुष्य की भौतिक उन्नति ही नहीं बल्कि आत्मिक कल्याण भी है जो पूर्णतया रूहानी दर्शन है। परमात्मा एकमात्र ऐसा अस्तित्व है जो सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान, सर्वत्र एवं आनन्द स्वरूप है, जो इस सृष्टि का सृजनहार भी है। संत परम्परा में नामदेव, कबीर, रविदास, नानक आदि संतों की एक लम्बी श्रृंखला रही है।परमात्मा के साध्य स्वरूप का वर्णन करते हुए ऋषियों–मुनियों, वेद–शास्त्रों, पुराणों एवं उपनिषदों ने उसे सत्य आनन्दमय एवं ज्ञान रूप कहा है। वेदों में आता है ''एकं सद विप्रा बहुधा वदन्ति।'' नानक साहेब ने कहा है ''सति सुहाणु सदा मनि चाऊ''(AD-P-4)। आप जपु जी के मूल मंत्र में कहते हैं ''१ ओं सतिनामु करता पुरखु निरभउ निरवैरू अकाल मूरति अजूनी सैंभ गुरप्रसादि''।

संगीत और संतमत में एक मुख्य बात जो उभरकर सामने आती है, दोनों की मुख्य धुरी है, बिन्दु है वह है – गुरू, सतगुरू। दोनों ही परम्पराओं में गुरू–शिष्य की कड़ी को, उसके सम्बन्धों में श्रद्धा, प्रेम, विश्वास, उसके हुकुम को सर्वोपरि माना जाता है। दोनों ने ही नाद की सत्ता को स्वीकारा है। नाद के अनहद स्वरूप के उपासक रहे हैं, लेकिन उसके दायरे या सीमायें भिन्न–भिन्न हैं। जहाँ संगीत में गुरू, संगीत साधना के विभिन्न पड़ावों से गुजरकर मंजिल तक यानि एक निश्चित मुकाम तक अपने शिष्य की उंगली पकड़कर लेजाते हैं वहीं संतमत में सतगुरू अपने जीवन और जीवन के आगे यानि मृत्यु के बाद भी अपने शिष्य का साथ निभाते हैं और यह बात भी उतनी ही सत्य है कि यह शिष्य पर निर्भर करता है कि वह अपने–अपने क्षेत्र में कितनी मेहनत और लगन से मंजिल की सीढियों पर चढता है। गहराई से विचार करें तो हमारे संगीत में प्रचलित सात सुरों में भी संतमत के सिद्धान्तों का रहस्य छिपा है।९ सर्वप्रथम "SA" अर्थात् षड़ज जो संगीत की नींव है। संतमत में ''सा'' से सत्संग (Satsang)जो रूहानियत की नीव है ''त्न'' अर्थात् रिषभ, इसे संतमत में ''रेस्क्यू''(Rescue)यानि सुरक्षा कहा है। संसारिक मोह माया से अपनी सुरक्षा कैसे करें? संतमत कहता है साध संगत द्वारा। "GA" गंधार अर्थात् संतमत में इसे ''ग्रेस''(Grace)दया के अर्थ से ले सकते हैं। संतों का कहना है कि परमात्मा की सबसे बड़ी दया है हमें मनुष्य योनि दी, जिसमें सतगुरू से मिलकर हम परम सत्ता से रू–ब–रू हों। इसके बाद संगीत esa "MA" अर्थात् ''मध्यम'' यहाँ संतमत में ''मास्टर'' (Master)की तरफ इशारा किया है। जिस प्रकार किसी भी कार्य में कुशलता हासिल करने के लिये हमें गुरू की आवश्यकता होती है उसी प्रकार रूहानियत की राह में सतगुरू का सांनिध्य अति आवश्यक है।"PA"Aष्यानि ''पंचम'' संतमत में इसे ''प्रेयर''(Prayer) या प्रार्थना का प्रतीक माना है। हमें हर समय परमात्मा से परमात्मा को ही पाने की प्रार्थना करनी चाहिये।"Dha" यानि ''धैवत'' संतमत में इसे ''दर्शन''(Darshan)से जोड़ा है, जो दो प्रकार के हैं आन्तरिक व बाहरी। सतगुरू के अपने अन्तर में दर्शन करो। "NI" यानि ''निषाद'' संतमत में इसे ''निर्वाण'' (Nir vana) या मुक्ति कहकर इंगित किया है। जिस संगीत की हम आम चर्चा करते हैं या गुरूओं से सीखते हैं, संतों का मतहै वही धुन, संगीत चौबीस घण्टों हमारे अन्तर में धुनकारें दे रही है जिसे हमारे बाहरी कान सुन नहीं सकते हैं। जिस जीव ने यहाँ जन्म लिया है उसका जाना यानि मृत्यु निश्चित है, जिसे हम अपने व्यवहारिक जीवन में हर रोज देखते हैं। हमारे धार्मिक ग्रन्थों में चौरासी लाख योनियों का ज़िक्र आता है, जिसे चार वर्गों में विभक्त किया है– जेरज, अण्डज, श्वेतज एवं उद्धभिज। मनुष्य ज़ेरज की श्रेणी में आता है। बुद्धि तत्व मनुष्य को अन्य योनियों से अलग करता है। संतों का कहना है कि मनुष्य के अतिरिक्त

सभी योनियाँ भोग योनियाँ हैं, केवल मनुष्यों में ही कर्म की प्रधानता होती है। संगीत के माध्यम से हम पांचों विकारों पर विजय प्राप्त करके परमात्मा से एक रूपहो सकते हैं जो हमारे मानवीय जीवन का अन्तिम लक्ष्य है। संक्षेप में मनुष्य के ध्यान को, मन को, चित्त को एकाग्र करने में संगीत पूर्ण रूप से सक्षम रहा है। यही ध्यान हम संगीत के माध्यम से ईश्वरीय अराधना में लगाये ंतो हम परम तत्व को प्राप्त कर सकते हैं। भजन, गुरूबाणी, कीर्तन, सूफी कलाम, कव्वाली, नात आदि इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं। जहाँ बैठकर हम उस परमात्मा के ध्यान में इतने तल्लीन हो जाते हैं कि हमें अपनी सुध–बुध नहीं रहती वही परमानन्द की स्थिति है जहाँ केवल प्रेम ही प्रेम है जो हमें सांसारिक भोगों से, बन्धनों से छुटकारा दिलाकर अनहद सत्ता परमात्मा से एकीकार करने में सहायक होता है। इसी कारण सभी मतों, सम्प्रदायों, धर्मों में संगीत को, ईश्वरीय उपासना का सबसे सरल, सहज एवं सशक्त माध्यम स्वीकार किया है।

संदर्भ ग्रंथ –

१. आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, उत्तर भारत की संत परम्परा पृ.४।

२. आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, उत्तर भारत की संत परम्परा पृ.४।

३. जॉन १ : ४

४. कोरिथियन १.४ : ४

५. कल्याण साधना अंक, गीता प्रेस, गोरखपुर।

६. डॉ. सुभद्रा चौधरी, संगीत संचयन, पृ.४६।

७. पंडित ओमकारनाथ ठाकुर, प्रणव भारती, पृ. ५।

८. अनुवादक एल.एन. गर्ग, सूफी इनायत खां पृ. १३।

९. March 2011 Magzine “A Spritual Link”, Science of the Sole Research Centre, New Delhi, P-34

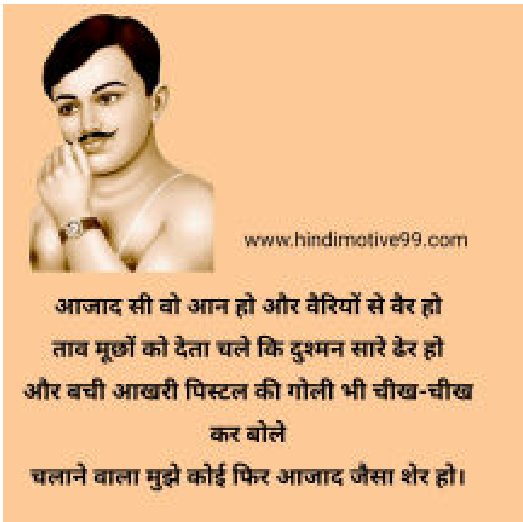

भारतीय शास्त्रीय संगीत के प्रचार-प्रसार में मध्य प्रदेश के प्रसिद्ध संगीत समारोहों का योगदान

डॉ. दीपक कुमार मित्तल
राजा मानसिंह तोमर संगीत एवं कला विश्वविद्यालय, ग्वालियर मध्य प्रदेश।
Email: deepakmittal05@gmail.com
Mob. 8827411665

मध्य प्रदेश की स्थापना के पूर्व सांस्कृतिक दृष्टि से मध्य भारत और विंध्य प्रदेश दोंनों ही सांस्कृतिक गतियों में जैसे शास्त्रीय संगीत, चित्रकला, मूर्तिकला आदि कलाओं में दोंनो ही प्रांत अपने—अपने स्तर पर प्रख्यात थे। मध्य भारत के क्षेत्र में ग्वालियर, इंदौर ऐसे जिले थे जहां सांगितिक दृष्टि से राज्य के राजाओं का आश्रय एवं प्रोत्साहन मिलता रहा था।[१]

मध्य प्रदेश में संगीत समारोंहों के द्वारा संगीत का प्रचार—प्रसार और संवर्धन किया जाता है। प्रदेश में होने वाले सभी राज्य स्तर पर होने वाले समारोंहो की भागीदारी सुनिश्चित मानी गई है। समारोहों के द्वारा सभी उच्च स्तर के कलाकार अपनी प्रस्तुति देकर संगीत का प्रसार करते है। समारोह में कलाकार अपने संगीत के द्वारा श्रोताओं के मन में संगीत के प्रति श्रद्धा और लग्न पैदा करते है। जिससे लोग संगीत सीखने के लिए आतुर होते है। और इस तरह शास्त्रीय संगीत का प्रचार—प्रसार करके संरक्षण और संवर्धन के लिए मध्य प्रदेश के कलाकारों का योगदान होता है।[२] मध्य प्रदेश में होने वाले सांगितिक समारोह राष्ट्रीय स्तर पर होते है। ये समारोह संगीतज्ञों की याद में करवाये जाते है। जो कि विभिंन्न शहरों में प्रतिवर्ष होते है। जिनकी सूची निम्मलिखित है:

१. तानसेन समारोह —ग्वालियर
२. उस्ताद हाफिज़ अली खां समारोह — मैहर
३. उस्ताद अमीर खां समारोह — इन्दौर
४. उस्ताद अलाउद्दीन खां समारोह — मैहर
५. कालीदास समारोह — उज्जैन
६. कुमार गंधर्व समारोह — देवास
७. खजुराहो नृत्य समारोह — खजुराहो
८. ध्रुपद समारोह — भोपाल,ग्वालियर

तानसेन समारोह —

लगभग पॉच सौ वर्षों के बीत जाने के बाद भी तानसेन हमारे सामने भारतीय शास्त्रीय संगीत के एक सशक्त प्रतिमान की तरह है जिनकी कीर्ति को आज की आधुनिकता के चलते किसी तरह झुठलाया नही जा सकता। उनका मान पुराने सितार की तरह भारी है और समुद्र की अतल गहराई जितना सांद्र। तानसेन की स्मृति को, उनकी परंपरा को अक्षुण्ण रखने के उद्देश्य से उस्ताद अलाउद्दीन खॉ संगीत एवं कला अकादमी के माध्यम से मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद् एवं संस्कृति विभाग प्रतिवर्ष दिसम्बर माह में ग्वालियर में मोहम्मद गोस के मकबरे पर एवं तानसेन की समाधि पर तानसेन समारोह आयोजित करता है जिसके आलोक में भारतीय शास्त्रीय संगीत के शीर्षस्थ कलाकार न केवल अपनी कला का उत्कृष्ट सौंदर्य प्रस्तुत करते है बल्कि धारा के विरुद्ध कलात्मक अनुशासन का नव्य रूप प्रदर्शित करते है।[३]

उस्ताद अमीर खां समारोह —

महान गाायक अमीर खां साहब का जन्म शताब्दी वर्ष और अमीर खां समारोह का रजत जयंती वर्ष तीन दिवसीय कार्यक्रम का आयोजन जनसम्पर्क संचालनालय, उस्ताद अलाउद्दीन खां,

संगीत एवं कला अकादमी, मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद, इन्दौर नगर निगम और अभिनव कला समाज के सम्मिलित प्रयासों से इंदौर में प्रतिवर्ष २०—२२ जनवरी को किया जाता है। समारोह के दौरान अमीर खां साहब के जीवन पर आधारित चलचित्र का प्रदर्शन तथा संगोष्ठी भी अयोजित की जाती है।४

कुमार गंधर्व समारोह—

कुमार गंधर्व की स्मृति में प्रत्येक वर्ष इस समारोह का आयोजन ८ अप्रैल को देवास में किया जाता है। यह समारोह महान गायक कुमार गंधर्व के जन्मदिन का जश्न मनाने के लिए १९९२ से निरंतर मनाया जा रहा है। इस समारोह में अनेक सांस्कृतिक कार्यक्रमों और उभरते कलाकारों को प्रोत्साहित करने के लिए आयोजन किया जाता है। लोक गीतों और शास्त्रीय संगीत का अनूठा मिश्रण इस समारोंह में दिखाई देता है। इस समारोंह का सबसे दिलचस्प हिस्सा नए कलाकारों को मंच प्रदर्शन करना होता है।

उस्ताद अलाउद्दीन खां समारोह —

मैहर में प्रतिवर्ष बाबा अलाउद्दीन खां की याद में इस समारोह का आयोजन होता है। बाबा की ख्याति किसी एक वाद्य बजाने में नही अपितु सभी वाद्य यंत्र बजाने में निपुण थे। इसलिए यह समारोह शास्त्रीय संगीत का प्रचार प्रसार के लिए मनमोहक प्रस्तुति होती है। इस समारोह का प्रमुख आर्कषण मैहर बैंड का वादन होता है।

कालिदास समारोह —

कालीदास की स्मृति को अमर बनाने के लिए कालीदास अकादमी द्वारा उज्जैन में इस समारोह का आयोजन किया जाता है। यह समारोह प्रत्येक वर्ष एक सप्ताह तक चलता है। यह समारोह सन् १९७६ से प्रतिवर्ष फरवरी—मार्च माह में आयोजित होता है। अन्तर्राष्ट्रीय महत्व का सात दिवसीय समारोह भारतीय शास्त्रीय नृत्य का सबसे बड़ा समारोह है। इसमें नृत्य की सभी विधाओं जैसे— कथक, कुचिपुड़ी, ओडिसी, भरतनाट्यम, मणिपुरी, मोहिनीअट्टम आदि के कलाकार भाग लेते है। इसमें विदेशी सैलानियों और नृत्य विशेषज्ञों के अलावा साधारण नागरिक भी बड़ी संख्या में एकत्रित होकर समारोंह का रसास्वादन करतें है।५

उस्ताद हाफिज़ अली खां समारोह—

उस्ताद अमजद अली द्वारा अपने पिता उस्ताद हाफिज़ अली खां की स्मृति में इस समारोह का आयोजन किया जाता है। जिसमें देश के सभी जाने माने कलाकारों द्वारा गायन—वादन होता है। सभी कार्यक्रमों के होने के बाद अंत में उस्ताद अमजद अली का सरोद वादन से समारोह का समापन किया जाता है।

खजुराहो नृत्य समारोह—

खजुराहों नृत्य समारोह विभाग के सर्वश्रेष्ठ एवं प्रतिष्ठित समारोह में शुमार है। भारत वर्ष और अंतर्राष्ट्रीय कला क्षेत्र में इस समारोह की एक विशिष्ट पहचान है। इस समारोह में केवल प्रथम बार नही अपितु बार—बार प्रस्तुति का अवसर प्राप्त करने हेतु कलाकारों में एक सघन प्रतिस्पर्धा एवं ललक भी रहती है। ललित कलाओं की विभिंन्न विधाओं के कलाकारों को भी इस अवसर पर पुरूस्कृत किया जाता है। साथ ही चयनित अन्य कलाकृतियों की भी प्रदर्शनी आयोजित की जाती है।

भारतीय शास्त्रीय नृत्य कलाओं पर केन्द्रित खजुराहो नृत्य समारोंह मध्य प्रदेश शासन संस्कृति द्वारा विगत ४४ वर्षो से निरन्तर अयाजित किया जा रहा है। भारतीय शास्त्रीय नृत्य परंपरा अत्यन्त समृद्ध है। नृत्यों में नौ रसों की अभिव्यक्ति से दर्शक रूबरू हाते है। यही एक माध्यम है जो हमें श्रृंगार से लेकर करूणा तक की गंगा में अवगाहन कराता है। सौन्दर्य का बोध सही मायनों में नृत्यों में ही परिलक्षित होता है।

कलाकारों की लगन, गहन प्रशिक्षण, निरन्तर अभ्यास, दीर्घ साधना और प्रस्तुति में निष्णात होना नृत्य के मूल गुण है तब जाकर सफल प्रस्तुति संभव हो पाती है। संस्कृति विभाग लोक और शास्त्रीय दोनों नृत्यों रूपो के संरक्षण, प्रोत्साहन और प्रचार–प्रसार के लिए बराबरी से प्रयत्नशील है। हर्ष का विषय यह है कि प्रदेश और देश के शीर्षस्थ और उदीयमान कलाकार, खजुराहो समारोह में शिरकत करने के लिए अपनी उत्सुकता जाहिर करते है। इस समारोह की चर्चा कलाकार, कला रसिक, कला समीक्षक, पर्यटक और जनसामान्य के बीच होती है।

ध्रुपद संगीत समारोह –

ध्रुपद समारोह संगीत बिरादरी के कुछ उल्लेखनीय नामों द्वारा मुखर प्रदर्शन करने का आदर्श स्थान है। भारतीय शास्त्रीय संगीत की प्रसिद्ध ध्रुपद शैली का आयोजन भोपाल में होता है। इस समारोह द्वारा शहर में दुनिया भर के संगीतज्ञ अपनी प्रस्तुति देते है। इस समारोह का मुख्य उद्‌देश्य शांति की भावनाओं के साथ–साथ श्रोताओं में आर्कषण पैदा करना है। ध्रुपद एक प्रकार का भक्ति संगीत है जिसकी उत्पत्ति का वर्णन हिन्दू धर्म के प्राचीन ग्रंथ सामवेद में किया गया है। ध्रुपद में प्रबंध और छंद शैलियों का प्रदर्शन किया जाता है। भोपाल में ध्रुपद संगीत समारोह में संगीतज्ञ कई रचनाओं की प्रस्तुति देकर अपने प्रदर्शन से श्रोताओं को मंत्रमुग्ध कर देते है।६

मध्यप्रदेश के संगीत समारोह के बारे में सम्पूर्ण अध्ययन किया है जिससें हमने यह जाना कि ये सभी संस्थानों द्वारा संगीत के संरक्षण और संवर्धन किस प्रकार योगदान दिया जा रहा है।

संदर्भ सूची:

१. डां. शादाब अहमद सिद्‌दक़ी, मध्य प्रदेश सम्पूर्ण अध्ययन, पृ॰ सं॰ ३१८।

२. डां. पी. एल. गोहदकर, शोध–प्रबंध, १९८२, पृ॰ सं॰ २२५–२२६।

३. मध्यप्रदेश संदेश, फरवरी २०१२।

४. डां. शादाब अहमद सिद्‌दक़ी, मध्य प्रदेश सम्पूर्ण अध्ययन, पृ॰ सं॰ ३१९।

५. कला पंचाग–२०१९–२०, मध्य प्रदेश शासन समिति, संस्कृति विभाग।

६. टेलर, शर्मिला (२००६), मालवा में ध्रुपद शैली की परम्परा, नवजीवन पब्लिकेशन्स, निवाई, पृ॰ सं॰ ७१।

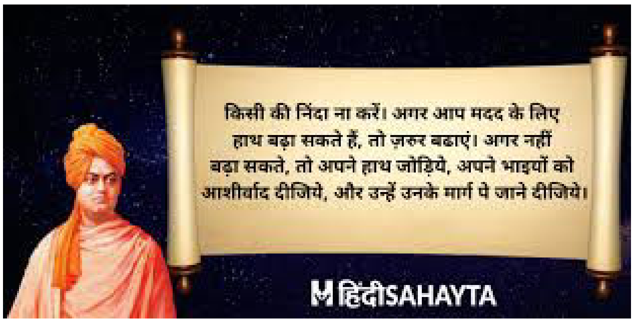

संगीत और धर्म

डॉ. मोनाली मसीह
असिस्टंट प्रोफेसर
दयानंद आर्य कन्या महाविद्यालय,
जरीपटका, नागपुर.
monalimasih@gmail.com

संगीत और धर्म का अन्याय संबंध मानव सभ्यता संस्कृति के विकास के प्रारंभ से चला आ रहा है। धर्म को हम उसके दो स्वरूप मे लेंगे – प्रथम बाहय स्वरूप जिसमें धर्म से जुड़ी सारी विधिया पूजा, पाठ, मंदिर, चर्च गुरू द्वारा प्रार्थना इत्यादि–

दूसरा, आंतरिक स्वरूप जिसमें आध्यात्म को लेकर हम उल्लेख करेंगे।

विश्व के सभी धर्मों में संगीत का स्थान पक्का है निश्चित है किसी धार्मिक कार्यक्रम का प्रारंभ संगीत से ही होता है। परमेश्वर की भक्ति, स्तुति आराधना वंदना करने का सबसे बडा माध्यम संगीत ही है। वेदिक काल से संगीत एक स्थापित भक्ति भाव की अभिव्यक्ति का साधन है। सभी जगह हर धार्मिक कार्यक्रम मे संगीत होता रहा है यही कारण है कि वेदों में जो लिखा है उसे श्रुति की संज्ञा दी गयी है अर्थात जो सुना जाता है और निश्चित है कि ये श्रुतियां गेय ही रही है।

उस काल मे यज्ञ और बलिदान का बहुत ज्यादा प्रचलन था इस धार्मिक विधि में सोम समूह के बलिदानों के अवसर पर स्वर में उच्चारित किये जाने वाले मंत्र पंडितो द्वारा गाये जाते थे जो आज सामवेद के नाम से हमारे समक्ष आये। यह एक सर्वव्यापी प्रचलित धार्मिक विधियां रही है, जिनमें यज्ञ और बलिदान किये जाते थे और इनमें संगीत का स्थान, संगीत का उपयोग निश्चित होता था। संगीत के द्वारा ही सारी विधियां प्रारंभ संपन्न हुआ करती थीं और आज भी यह परंपरा चली आ रही है भले ही यज्ञ और बलिदान बंद हो गये हों।

वैदिक धर्म के साथ बाइबल से निकले धर्म, जूडाइजम में नाद को मूर्ति अथवा कोनाग्राफी से अधिक महत्व दिया जाता था आध्यात्मिक भावनाओं की अभिव्यक्ति का सबसे बडा माध्यम संगीत था। मंदिरों मे भक्ति के लिये गायकों की नियुक्ति होती थी। भक्ति भावों को जागृत करने हेतु संगीत का सहारा लिया जाता था। डेव्हिड जो बाद मे बहुत बड़ा सम्राट बना, शाउल बादशाह के दरबार में गायक वादक था तो भक्ति गीतों द्वारा राजा को भक्तिभाव से ओत–प्रोत करता था।

चारों वेदों मे सामवेद सबसे अधिक स्तुत्य वेद है। यह अन्य तीनों वेदों से भिन्न है क्योंकि इसमे जितने भी मंत्र है जिन्हे साम कहते है संगीत के सात स्वरों में बध्द किये गये है और भारतीय शास्त्रीय संगीत का उद्‌गम स्थान यही है।

देवताओं को प्रसन्न करने हेतु यज्ञ बलि तथा संगीत सर्वमान्य माध्यम थे। पारसी, धर्म, ईसाई धर्म, सिक्ख धर्म – विश्व के सभी धर्मों में संगीत का महत्वपूर्ण स्थान है। कहने मे हरकत नहीं कि संगीत ने ही धर्म को अस्तित्व मे रखा है। सिक्ख धर्म में ''गुरूग्रंथ साहिब'' (धार्मिक किताब) की शुरूआत 'जपजी' से होती है – यह प्रात: कालीन वंदना है बाद में संध्या प्रार्थना होती है जिसे एहिरास कहते है और रात्रि की प्रार्थना कीर्तन – सोहिला होती है ये सब संगीतमय हैं। अमृतसर के स्वर्ण मंदिर मे जायें तो हर प्रहर

भक्ति संगीत के स्वर गूंजते रहते है।

पारसी धर्म की किताब में एक पूरा अध्याय है जिसमें स्तुति के गीत हैं जिन्हें वे याश्टस कहते है। इस प्रकार के धर्म के व्यस्त स्वरूप मे पूजा पाठ भक्ति स्तुति वंदना इत्यादि मे संगीत पूर्णरूप से छाया हुआ है।

धर्म के आंतरिक अथवा आध्यात्मिक के स्वरूप में संगीत का स्थान देखें। वास्तव में आध्यात्म धर्म का सार है। हर धर्म में मोक्ष की आत्मा की परमात्मा से एक होने की, सत्य तक पहुँचने की बात कही गयी और ज्ञान मार्ग और भक्ति मार्ग मे सबसे सबल और सरल मार्ग भक्ति मार्ग माना जाता है जो मनुष्य को परमेश्वर तक सरलता से पहुँचा देता है और हर धर्म में भक्ति का माध्यम संगीत ही है। कहते है सारा ब्राम्हण ब्रम्हा की श्वास से निर्मित हुआ। यह श्वास या फूंक क्या है ?

उपनिषदों मे अत्यंत उच्च कोटि का काव्य है रचनाकार कवि रहे होंगे जिन्होंने उपदेश नही दिये जिन्होंने दर्शन को, दर्शन शास्त्र को ढाँचे में नही ढाला और ना ही उन्होंने लिखा, संगीत के माध्यम से ही उन्होने अपनी सारी आध्यात्मिक अनुभूति व्यक्त की।

सभी धर्मों में यह मान्य है कि परमेश्वर अथवा देवता गण सबसे अधिक संगीत से प्रसन्न होते हैं। ब्रम्ह का आनंद संगीत है क्योंकि स्वर से ही – संगीत से ही संपूर्ण ब्राम्हण की निर्मिति हुई है और यह सारा ब्राम्हण उस निर्माण करनेवाले की ही अभिव्यक्ति है।

रवींद्रनाथ टेगौर के विचार मे तो सारा ब्राम्हण vibration से ही बना है। लय बध्द है तालबध्द है।

John Dryden की कविता Alexenders Feast में तो कवि ने स्पष्टरूप से लिखा है कि संगीत के स्वरों ने ही संपूर्ण विश्व की रचना की है –

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि ब्रम्हा तथा सारा ब्रम्हाण्ड संगीतमय है और जैसे हम रहते है कि कण–कण में भगवान है तो फिर कण–कण में संगीत भी है पतझड की सरसराती पत्तियों में है, झरनों मे बहते पानी के कल में है, वर्षा की गिरती बूंदों में हैं। सर्वत्र समा है संगीत और वह ईश्वर जिसकी तलाश मे हम दर बदर भटकते रहते है हृदय की धडकनों में संगीत है, रक्त संचार में संगीत है।

आध्यात्म क्या है उस – अनंत को, उस सत्य को उस शिव को उस सुंदरम को पाने की ललक, प्यास, चाह, और उसे पाने का सबसे सशक्त रास्ता संगीत – भारतीय शास्त्रीय संगीत आजकल टीव्ही पर देखते है कि हमारे प्रवचन देनेवाले बाबा महात्मा महाराज उपदेश प्रवचन देते देते गाने लगे है चाहे मुरारी बापू हो, या सुधांशु महाराज हो।

ओम मे संगीत है ओम में सारा विश्व है, ओम् उस महामहिम की अभिव्यक्ति है, अनुभूति है और ओम संगीत है।

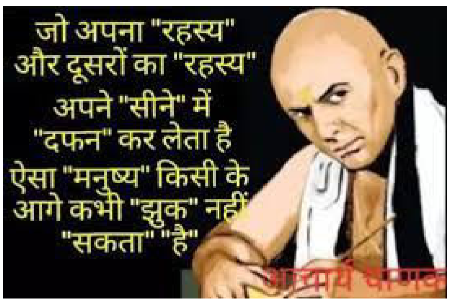

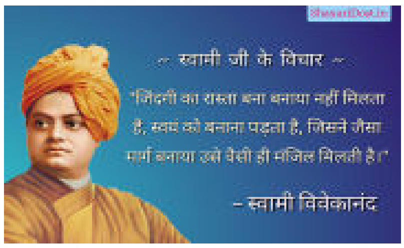

Rules & Conditions

1) The journal welcomes articles and other writing materials mainly related to fine Arts & Humanities.

2) Stories, Poems, Short Literary Pieces, Proverbs, Anecdotes of good taste may be sent.

3) Articles and writing materials may be sent in Hindi, English and Marathi.

4) Research Articles and other writing material will be published subject to their approval and selection by Editorial Board of the Journal.

5) All submissions should be typed in MS-Word, "KRUTI DEV 050' font should be used and send it in Document as well as PDF format.

6) In all matters related to the publication of the articles and other material the decision of the Editorial Board of the Journal will be final.

:: Contact ::

Dr. Monali Masih

Cell : 9370971222

Mail ID : monalimasih@gmail.com